पंक और पंकज

प्रथम परिच्छेद

[१]

प्रातः समीर चलती है तो दूर छिपे अज्ञात स्थानों पर भी जा पहुँचती है। न्यूनाधिक मात्रा में इसका प्रभाव सब पर होता है। भले ही कोई भाग्यहीन, दूर किसी गुफा के अँधियारे में पड़ा हो, वह भी प्रातः की समीर के प्रभाव से बच नहीं सकता।

भारत में भी प्रातः की एक सुखद समीर चली। स्वराज्य मिला। एक सहस्र वर्ष की दासता की शृंखलाएँ टूटीं और भारत का मानव भी स्पन्दित हो उठा। दो सहस्र मील लम्बा-चौड़ा देश प्रसन्नता से देदीप्यमान हो गया। कलकत्ता और बम्बई सदृश प्रमुख नगरों में तथा दिल्ली, लखनऊ, पटना, मद्रास इत्यादि राजनीतिक हलचल के केन्द्रों में तो स्वराज्य मिलने की धूम थी ही, यह धूम राजस्थान की शुष्क मरुभूमि

में बसे तीन-चार घरों के गाँवों तथा हिमाचल के दुर्गम मार्गों पर बनी गड़रियों की झोंपड़ियों में भी पहुँची। कैसे पहुँची, और पहुँचने पर कैसी अनुभूति हुई, यह वर्णनातीत है। परन्तु जब पहुँची तो एक नव उमंग की तरंग को लिये हुए, मानव के लिये स्वर्ग का द्वार खोलते हुए, उसके सुख-स्वप्नों को साकार करने की आशा से भरी हुई।

जैसे बन्दी की बेड़ियाँ खुलने पर प्रथम क्रिया जो उसके मन पर होती है, वह जकड़कर बाँधे हुए अंगों को फैलाता है, वैसे ही भारत में मानव ने साँस ली। उसने दीर्घ साँस ली और प्रभात के उस मलयानिल को अपने शरीर में भर लिया।

कुमायूँ की पहाड़ियों में अलमोड़ा से कैलाश के मार्ग पर, मार्ग से भी एक ओर हटकर, गड़रियों का एक परिवार रहता था। वह परिवार वहाँ जाकर कब से रहने लगा और क्यों वहाँ गया, यह कोई नहीं जानता था। उस परिवार का प्रमुख व्यक्ति, जिसका नाम श्रीपाल था, बस इतना ही जानता था कि उसने अपने बाबा को इसी कुटिया में मरते देखा था। बाबा के पश्चात् दादी मरी। उसके पिता के तीन भाई और एक बहन थी। दो भाई परिवार छोड़ गये। एक तो इस पुरखा के होश सँभालने से पहले ही चला गया था और दूसरा एक गौरवर्णीय यात्री के साथ कैलाश को गया तो फिर लौटकर नहीं आया। पुरखा के पिता की बहन वहाँ से दस कोस के अन्तर पर एक अन्य परिवार में दे दी गई थी और उसका पिता उनके परिवार की एक लड़की को अपनी पत्नी बनाकर ले आया।

पुरखा के पिता के घर में एक लड़का और दो लड़कियाँ हुई। एक लड़की की अदला-बदली तो एक अन्य परिवार की लड़की से हो गई। इस प्रकार उस पुरखा का विवाह हुआ और उसका परिवार चला। इसकी दूसरी बहन के बदले में किसी लड़की के लिये कोई लड़का नहीं था। लड़की बड़ी होने लगी और भाई की चिन्ता बढ़ने लगी। एक दिन एक पादरी, नीली नीली आँखों वाला, सुनहरी बाल, गोरा रंग, चाँदनी के

समान श्वेत चोगा पहने और उस पर एक काला रस्सा कमर में बाँधे हुए, इस कुटिया के सामने से गुज़रा और अविवाहित युवती को अकेली बैठी देख, खड़ा हो गया।

लड़की का भाई भेड़ें और बकरियाँ इकट्ठी करने गया हुआ था। भाभी कुटिया के अन्दर बैठी अपने नवजात शिशु को स्तन-पान करा रही थी। पादरी ने पूछा, "लड़की, तुम्हारी शादी हो गई है ?"

इस प्रश्न को सुन, लड़की का मुख लज्जा से लाल हो गया और पादरी समझ गया। इस स्थान पर इतनी बड़ी आयु की अविवाहित लड़की मिलनी प्रायः असम्भव थी। पादरी लोग जानते थे कि जहाँ भी ऐसी लड़की होती है, वहाँ कुछ-न-कुछ विशेष विवशता कारणीभूत होती है। उस विवशता से लाभ उठा, प्रभु यीशु की भेड़ों की संख्या में वृद्धि के अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये।

उसने कहा, "चलो, हम तुम्हारा विवाह करा देंगे। प्रभु यीशु की शरण में आओ। वह तुम्हारी उँगली पकड़, तुमको भगवान् के द्वार पर ले जाकर खड़ा कर देगा।"

लड़की मुस्कराई और पादरी ने अपनी उँगली आगे कर दी, मानो किसी बालक को साथ ले जा रहा हो। लड़की अपने भाई का ऊनी सलूका ठीक कर रही थी। पादरी के कथन पर मनन कर वह अपने स्थान से उठी और बिना अपनी भाभी को आवाज़ दिये, उसके साथ चल पड़ी। भाभी भीतर बैठी कुटिया के बाहर इन दोनों में हो रहे वार्तालाप को सुन रही थी। उसे यह समझ में आ गया था कि मुन्नी अर्थात् उसकी ननद जा रही है। परन्तु उसने रोका नहीं। वह मन में विचार करती थी, 'अच्छा हुआ, भाई का बोझ हलका हुआ।'

भाई घर में आया तो पत्नी के मुख से बहन के चले जाने का वृत्तान्त सुन उसकी आँखों से आँसुओं की दो बूँदें टपक पड़ीं। इस पर भी वह विचार करता था कि परमात्मा ने उसकी पुकार सुन ली।

यह पुरखा अब अस्सी वर्ष का बूढ़ा हो गया था। इसके भी सन्तानें

हुईं। लड़के मैदानों में जीविकोपार्जन के लिए चले गये और लड़कियों का विवाह कर दिया गया। एकाध सन्तान रुग्ण होकर चिकित्सा के अभाव में काल की ग्रास भी हो गई। अब तो उसका एकमात्र पोता ही इस समय शेष था। पत्नी और अन्य सब प्राणी बिखर गये थे। वह बालक ही इस बूढ़े का एकमात्र आश्रय रह गया था।

उसके पास आधा बीघा भूमि थी, वह भी छोटे-छोटे टुकड़ों में। उस पर केवल धान और मक्का ही उपज सकती थी। बीस-बाईस भेड़ें और कुछ बकरियाँ थीं। बकरियों का मांस खाया जाता था। भेड़ों की ऊन के कपड़े बनते थे अथवा बेची जाती थीं। मक्का और चावल खाने के काम आते थे। यह था उसका जीवन और यह सामान तीन-चार प्राणियों के लिये जीवन चलाने के लिये पर्याप्त था। जब भी प्राणी संख्या में बढ़ते थे, या तो वे किसी नगर की ओर चल पड़ते थे अथवा कोई रोग अपना अस्वागतकारी हाथ बढ़ाकर, परिवार पर दया कर, उसका बोझ हलका कर जाता था।

बूढ़े की पतोहू, बालक सुन्दर की माँ भी बीमार हुई और चल बसी। इससे तो बूढ़ा फूट-फूटकर रोया। अपने पुत्र के मरण पर उसको इतना दुःख नहीं हुआ था. जितना पतोहू की मृत्यु पर। बूढ़ा मन में केवल एक आशा लिये कि सुन्दर बड़ा होगा, घर में बहू लायेगा और परिवार चलायेगा, स्वयं जीवित रहा।

माँ की मृत्यु के समय सुन्दर तीन वर्ष का था। बूढ़े की एक लड़की उसके स्थान से बीस कोस के अन्तर पर विवाह दी गई थी। जब से उसका विवाह हुआ था, वह अपने बाप से मिलने नहीं आ सकी थी। अब एक दिन वह और उसका पति आये। उनके कोई सन्तान नहीं थी। दामाद ने सेना में नाम लिखा दिया था और अपनी पत्नी को उसके बाप के घर छोड़, सेना में जाने के लिए, यहाँ आया था।

जर्मनी का द्वितीय युद्ध आरम्भ हो चुका था। रूस और जर्मनी में फूट पड़ चुकी थी। जापान ने अमेरिका पर आक्रमण कर दिया था और

साथ ही वह मलाया और बर्मा के मार्ग से भारत की ओर बढ़ने का विचार रखता था। इस विपत्ति के समय भारत सरकार ने फौजी भरती तेज़ कर दी थी। सरकार के भरती करने वाले अफ़सर गाँव-गाँव घूम कर रिक्रूट एकत्रित कर रहे थे।

सुन्दर के फूफा सुमेर ने भी सेना में नाम लिखा दिया था। जब उसको आज्ञा हुई कि वह रानीखेत में अमुक तिथि को उपस्थित हो जाय, तो वह अपनी पत्नी को उसके पिता के घर छोड़ने चला आया।

बूढ़े ने तो उससे कुछ विशेष बात पूँछी नहीं। उसको अपनी लड़की के घर आ जाने से न किसी प्रकार का हर्ष हुआ और न शोक ही। वह जानता था कि लड़की खेत पर काम करेगी तो कुछ पैदा कर ही लेगी। इससे उसका भी निर्वाह होगा और भतीजे का पालन भी। स्वयं को तो बूढ़ा अब कुछ ही दिन का मेहमान समझता था।

सुन्दर ने तो अपने फूफा से प्रश्नों की झड़ी ही लगा दी। उसने पूछना आरम्भ किया—"कहाँ जा रहे हो, फूफा ?"

"फौज में।"

"वह क्या होती है ?"

"बहुत से आदमी इकट्ठे होकर जब लड़ने के लिये तैयार होते हैं, उसे फौज कहते हैं।"

"ये क्यों लड़ते हैं ?"

"जब कोई बदमाश लोगों को तंग करता है तो उसको मारने के लिये लड़ना पड़ता है।"

"तो बदमाश बहुत बलशाली होता है, उससे लड़ने के लिये बहुत से लोगों को लड़ना पड़ता है ?"

"हाँ।"

"वह कौन बदमाश है, जिससे तुम लड़ने जा रहे हो ?"

"जर्मन का राजा हिटलर है। वह बहुत बलशाली है।"

"फूफा ! जाओ, उसको मारकर उसका सिर मेरे लिए ले आना।"

"सिर ले आऊँ ?"

"हाँ, बाबा एक दिन बता रहे थे कि एक सूर्पणखा थी और एक लक्ष्मण थे, जिसने उसके नाक-कान काट लिए थे। बाबा कहते थे कि यदि लक्ष्मण उसका सिर काट लेता तो फिर न रावण को पता चलता, न वह सीता-हरण करता, न युद्ध होता। इसलिए फूफा ! तुम उसका, क्या नाम बताया था, तुमने उसका ? कुछ भी हो, सिर काटकर ले आना।"

सुमेर यह सुन हँस पड़ा।

[२]

सुमेर जिस समय सेना में भरती होकर रानीखेत के लिए गया था, सुन्दर उस समय पाँच वर्ष की आयु का था। पाँच वर्ष के पश्चात् जब वह लौटा, तब तक सुन्दर दस वर्ष का हो चुका था। उसकी फूफी न केवल भेड़-बकरियों का काम करती थी, प्रत्युत अपने सबके खाने के लिए मक्का, चावल आदि भी उत्पन्न कर लेती थी। बूढ़ा भी कुछ काम करता रहता था। सुन्दर तो फूफी का सहायक, पुत्र और सब-कुछ था। सुन्दर को भी माँ का वात्सल्य फूफी से प्राप्त हुआ, तो वह प्रसन्न हो गया।

जब सुमेर लौटा तो बूढ़ा मरणासन्न पड़ा था। वहाँ बीस-बीस कोस तक कोई डॉक्टर, हकीम, वैद्य नहीं था। केवल एक पादरी वर्ष में दो बार आया करता था और भगवान् के पुत्र यीशुमसीह सुरक्षा को प्रदान कर जाता था।

बूढ़ा इस अवस्था में ज्वरग्रस्त हुआ तो सुन्दर की फूफी ने उसी पादरी की दी हुई कुनीन की गोलियाँ अपने पिता को खिला दीं।

सुमेर के लौटने पर उसकी पत्नी और सुन्दर को बहुत प्रसन्नता हुई, परन्तु घर में मृत्यु के लक्षणों से उनके मुख की चिन्ता नहीं मिट सकी। कुनीन देने से बूढ़े की अवस्था सुधरने की अपेक्षा बिगड़ी ही थी।

सुमेर कुटिया में पहुँच, बाबा को पुकारने लगा, परन्तु वह अचेत पड़ा था। अब तो वह एकाध घड़ी का ही मेहमान रह गया था। धैर्य से मृत्यु की प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह गया था।

तीन दिन तक अचेत रहकर वृद्ध ने प्राण छोड़े। सुमेर ने अपनी पत्नी की राय से वहीं, अपने श्वसुर के घर में रह जाने का निश्चय किया। वहाँ बकरियाँ थीं, भेड़ें थीं और कुछ भूमि थी। साथ ही सुन्दर जैसा कुमार, पुत्र के समान था।

परन्तु सुन्दर जब सुमेर से युद्ध की और फिर भारत में हो रहे आन्दोलनों की बातें सुनता था, तो उसको यह कुटिया, खेत और भेड़-बकरियाँ नीरस प्रतीत होने लगती थीं। वह मन में वहाँ से भाग, उस विशाल संसार में जाकर विचरण करने का विचार करता था।

एक दिन सुमेर ने सुनाया, "एक थे सुभाष बाबू। हमारी पूरी-की-पूरी रेजिमेंट जापान की कैदी हो गई थी। वे आये और कहने लगे, 'भाइयो ! हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र करना है। बताओ, कौन सिपाही इस काम के लिये मेरे साथ आता है ?' हम सबने राय की और भारत की स्वतन्त्र सेना में भरती हो गये। इम्फाल में एक लड़ाई लड़ी और भारत की सरकारी सेना को मार-मारकर भगा दिया। फिर कुछ नहीं हुआ। जापान ने हमारी सहायता नहीं की। हम वापस लौट गये। एक दिन हम अंग्रेज़ी सरकार के कैदी हो गये। जापान और जर्मनी दोनों हार गये। हमको कैद कर भारत में लाया गया। अंग्रेज़ी सरकार ने हम सबको गोली से उड़ा देने का आदेश दे दिया। परन्तु पण्डित जवाहरलाल नेहरू और देश के अन्य लोगों ने आन्दोलन किया और हम छूट गये।"

"आन्दोलन किया ? वह क्या होता है फूफा ?"

"वह एक तरह का दाँव-पेच होता है। पण्डित जवाहरलाल ने दाँव चलाया और हम छूट गये।"

दस वर्ष का बालक, सभ्यता नाम की वस्तु से कोसों दूर, केवल

भले-बुरे का नैसर्गिक ज्ञान रखता हुआ, सभ्य समाज की इन बातों को सुनकर चकित रह गया। वह कभी मन में विचार करता था कि यदि फिर कोई हिटलर जैसा बदमाश पैदा हो, भले लोगों को तंग करे, भले लोग फिर युद्ध के लिये सेना में भरती हों तो वह अवश्य युद्ध में जायेगा और ऐसे सुन्दर-सुन्दर स्थान देखेगा, जैसे उसके फूफा ने देखे हैं। वह शौर्य के ऐसे कार्य करेगा, जैसे सेनानायक सुभाष बाबू ने किये हैं।

न जाने वह कब तक युद्ध होने और उसके लिये स्वयं सेना में भरती होने की प्रतीक्षा करता रहता, परन्तु उससे पहले ही उसको संसार में जाने का अवसर मिल गया। एक दिन कैलाश को जाने वाले मार्ग से कुछ लोग घाटी में उतरते दिखाई दिये। वे सब एक बाजा बजाते और गाते हुए आ रहे थे। वे गीत उनकी अपनी पहाड़ी भाषा में ही गाये जा रहे थे।

उनके बाजे और गाने की आवाज़ सुन सुन्दर, जो उस समय खेत को निराने में संलग्न था, खड़ा हो उनकी ओर देखने लगा। वे आये तो उसके खेत के किनारे बैठ गये और गाने लगे। वे जो गा रहे थे, उसका अर्थ कुछ इस प्रकार था—

"प्रभु यीशुमसीह निर्धन, दुखिया, बीमार और अज्ञान के अंधकार में फँसे लोगों को मुक्ति दिलाने के लिये संसार में आये थे। आओ, समय न गँवाओ। जीवन छोटा है, पीछे पछताना पड़ेगा।"

सुन्दर की फूफी ने खेत में भुट्टे तोड़कर, वहीं पर आग जला, उनको भूना और उन सबको खाने के लिये दे दिये। जब सुन्दर की फूफी भुट्टे भून रही थी, उस समय उस भजन-मण्डली का नेता सुन्दर से बातें कर रहा था। सुन्दर ने कहा, "तुम्हारा बाजा बहुत मीठा लगता है।"

"हाँ, उसमें गीत तो उससे भी मीठा है।"

"यह यीशु कौन है?"

"वह परमात्मा का पुत्र था। वह इस दुनिया में सबके दुःख-हरण के लिये आया था। जो उसकी शरण में जाता है, वह उसको धन देता

है, वस्तु देता है, मकान देता है और फिर अंत में स्वर्ग का द्वार उसके लिये खोल देता है।"

"बहुत अच्छा आदमी है वह।"

"हाँ, उसकी शरण में आओ तो सब-कुछ मिलेगा।"

"मिठाई भी मिलेगी?"

"हाँ, जो चाहो।"

"मैं उसकी शरण में आना चाहता हूँ।"

"तो ऐसा करो, रात को ऊपर उस बड़े मार्ग पर पहुँचकर, दाहिने हाथ को चल पड़ना। चौथाई कोस चलने पर हमारा कैम्प मिलेगा। वहाँ कल प्रातःकाल तक आ जाना। बस वहाँ आकर तुम भगवान् के आश्रय में आ जाओगे। पश्चात् तुम्हारी देखभाल करना प्रभु का काम होगा।"

सुन्दर के मन में बात बैठ गई। रात्रि में वह उठा और चाँदनी के प्रकाश में चलता हुआ, प्रभु यीशुमसीह के गल्ले में एक भेड़ बन, सम्मिलित हो गया।

उसके वहाँ पहुँचते ही एक विशेष साथी के साथ उसको अल्मोड़ा भेज दिया गया। अगले दिन सुमेर और उसकी पत्नी ने जब सुन्दर को लापता पाया तो वे भागते हुए उन मिशनरियों के कैम्प में गये। परन्तु उनके वहाँ पहुँचने से पूर्व ही कैम्प कैलाश की ओर जा चुका था। निराश दोनों वापस अपनी कुटिया में चले आये।

पांच दिन की पैदल यात्रा करके सुन्दर और उसका साथी वहाँ पहुँचे। सुन्दर को स्नान कराया गया। उसके बाल बनवाये गये और साफ-सुथरे कपड़े पहनने को दिये गये। पश्चात् उसको पढ़ने के लिये सेंट जोसफ़ स्कूल में भरती करा दिया गया।

वह स्कूल की पहली श्रेणी में पढ़ने लगा। उसकी क्लास में अधिकांश बच्चे चार-चार, पाँच-पाँच वर्ष के थे। सुन्दर को भूलें करते देखकर वे उसकी खिल्ली उड़ाया करते थे। इससे सुन्दर को लज्जा भी लगती थी और क्रोध भी आता था।

पढ़ाने वाली एक स्त्री थी। उसका नाम था बासन्ती पाल। वह श्रीयुत पाल की धर्मपत्नी थी। पाल गिरिजाघर में 'ऑरगन' बजाने का कार्य करता था और स्कूल में बच्चों को गाना भी सिखाता था।

पाल की पत्नी सुन्दर को बहुत प्यार करती थी। पहले ही दिन जब सुन्दर स्कूल में आया तो मिसेज़ पाल उसको देख अति प्रभावित हुई थी। जाँच करने पर उसको विदित हुआ कि प्रचार-कार्य के लिये उत्तर को गई मण्डली इस लड़के को लाई है। जब सुन्दर को उसकी श्रेणी में भरती कराया गया तो वह बहुत प्रसन्न हुई। परन्तु यह देख-कर कि वह अक्षर तक नहीं पहचानता, उसने उसको अपने घर पर बुलाकर विशेष शिक्षा देनी आरम्भ कर दी। सुन्दर आयु में ग्यारह वर्ष का मेधावी बालक था और द्रुत गति से उन्नति करने लगा था। परन्तु जब तक वह अपनी आयु के बच्चों जितना पढ़ नहीं गया, उसकी खिल्ली उड़ाई ही जाती रही।

वह स्कूल की कमेटी के आधीनस्थ अनाथालय में रखा गया था। वहाँ पर सभी बच्चों को कठोर नियन्त्रण में रखा जाता था। अना-थालय की मैट्रन प्रौढ़ावस्था की एक स्त्री, वेणी स्मिथ थी। वह बच्चों को समय पर उठने, समय पर स्नानादि से छुट्टी पा, खाना खाने और स्कूल जाने, फिर स्कूल का काम करने तथा रात को सोने पर विवश करती थी। सदा हाथ में बेंत लिये घूमा करती थी और उस बेंत का वह बेखटके प्रयोग भी करती थी।

मिसेज़ पाल सुन्दर को पृथक् बैंच पर बैठाती और पढ़ाई के कमरे में उसको अपना पाठ चुपचाप स्मरण करने अथवा लिखने का काम करने के लिये छुट्टी दे देती थी। सुन्दर अपनी श्रेणी के बच्चों से आगे निकल गया था। इस पर भी वह अपनी आयु के बच्चों से, जो छठी श्रेणी में पढ़ते थे, बहुत पीछे था।

अनाथालय में कपड़े, बिस्तर, खाना और फिर बीसियों ही लड़कों की संगत उसके अपने घर से विलक्षण थी। घर में तो दिन-रात चावल,

मक्की, आलू और दाल के अतिरिक्त कुछ भी खाने को नहीं मिलता था। वहाँ पर उसके अपने सिवाय अन्य कोई बच्चा भी नहीं था। यहाँ चाय, मक्खन, टोस्ट, अण्डा, रोटी, दाल, भाजी, मांस-मछली इत्यादि खाने को मिलते थे। नित्य नई वस्तु मिलती थी। दूध समान श्वेत बिस्तर की चादर, रजाई, कम्बल इत्यादि होते थे। पहनने के कपड़े यद्यपि खाकी रंग के थे, परन्तु सप्ताह में दो बार धोबी से धुले हुए मिलते थे। यह सब-कुछ बहुत ही सुखकारक था।

इस पर भी वह मन में कभी-कभी एक अज्ञात चंचलता का अनुभव करता था। उसको कुछ ऐसा अनुभव होता था कि उसकी कोई वस्तु खो गई है। वह मन में विचार करता था कि यह क्या है, परन्तु वह समझ नहीं सका था कि वह क्या वस्तु है, जो उसको घर में प्राप्त थी और यहाँ पर नहीं है।

कई दिन तक विचार करने पर भी वह समझ नहीं सका। धीरे-धीरे उसके हृदय में यह बात धँसती जा रही थी कि हर प्रकार के शारीरिक सुख प्राप्त होने पर भी वह बेचैन है।

पहले तो उसने समझा कि अपनी बुआ और फूफा से दूर होने के कारण वह उदास है। परन्तु मिसेज़ पाल का व्यवहार तो उसको अपनी बुआ से भी अधिक सहृदयता से परिपूर्ण प्रतीत होता था। यद्यपि मिस्टर पाल उसको सदा ही ठंडी दृष्टि से देखता था और उसकी ओर देखते हुए कभी मुस्कराता तक नहीं था, परन्तु मिसेज़ पाल उसको देख सदा मुस्कराती रहती और सिर और पीठ पर हाथ फेरकर प्यार करती रहती थी।

घर पर तो उसकी आदत थी कि वह रात को देर तक जागता रहता था। आकाश के तारों अथवा चाँदनी रात में चाँद को देख, मन में कल्पना के घोड़े दौड़ाया करता था। उसके बाबा ने बताया था कि ये चाँद, तारे और सूर्य देवता हैं, जो घूम-घूमकर मनुष्यों को देखते रहते हैं और उनके अच्छे अथवा बुरे कर्मों का फल देते हैं।

यहाँ उसको कभी आकाश की ओर देखने का अवसर ही नहीं मिलता था। सायं चार बजे स्कूल से मिसेज़ पाल के घर जाना होता था। उसके घर चाय पी, उससे पढ़ना होता था। रात को आठ बजे वह अनाथालय में पहुँच जाता था। वहाँ भोजन के पश्चात् पढ़ाई कर, दस बजे बिस्तर में चला जाना होता था। नींद आये अथवा नहीं, सब बच्चों को उस समय बिस्तर में चला जाना ही पड़ता था। इस कारण वह भी लेट जाता था। कभी-कभी तो वह बारह-एक बजे तक बिस्तर पर करवटें लेता रहता था। बिस्तर उसको काटता-सा प्रतीत होता था। परन्तु मिसेज़ स्मिथ को हाथ में बेंत लिये घूमते देख, उसका साहस नहीं होता था कि सिरहाने से सिर भी ऊँचा कर सके। उसने अपने साथियों में से कई लड़कों को पिटते हुए देखा था।

[३]

एक दिन सुन्दर स्कूल में पहुँचा तो उसकी आँखें लाल हो रही थीं। उसके गालों पर चपत लगने के चिह्न थे। मिसेज़ पाल ने देखा तो विस्मय में उसका मुख निहारती रही। श्रेणी के बच्चे आने लगे थे, इस कारण मिसेज़ पाल का ध्यान बँट गया। उसने उस समय सुन्दर से इसका कारण नहीं पूछा। वह यह समझती थी कि किसी लड़के से झगड़ा हुआ होगा और उसने सुन्दर को पीटा होगा। परन्तु किस कारण झगड़ा हुआ है और क्यों पीटा है, वह समझ नहीं सकी। सुन्दर, वह जानती थी, दूसरों के हँसी-ठट्ठे की ओर ध्यान नहीं देता था। वह अपने ही विचारों में लीन रहता था। तो फिर यह आज क्या हुआ ? वह जान नहीं सकी।

स्कूल का समय समाप्त होने पर मिसेज़ पाल ने सुन्दर से अपने साथ चलने के लिए कहा। वह ठहर गया। मिसेज़ पाल स्कूल के कार्यालय में गई और पाँच मिनट में ही वहाँ से निकल, अपने क्वार्टर की ओर चल पड़ी। सुन्दर उसके साथ-साथ था। मार्ग में मिसेज़ पाल ने पूछा, "सुन्दर, तुम उदास क्यों हो ?"

"मदर !" इसी तरह स्कूल के सब लड़के वहाँ की अध्यापिकाओं को पुकारा करते थे। "मैं......"वह कहता-कहता रुक गया। मिसेज़ पाल ने घूमकर उसकी ओर देखा तो चकित रह गई। सुन्दर रो रहा था।

"क्या बात है सुन्दर ? तुम रो क्यों रहे हो ?"

सुन्दर कुछ बोल नहीं सका। अपनी जेब से रूमाल निकाल वह आँखें पोंछने लगा। मिसेज़ पाल ने मार्ग में और कुछ पूछना उचित नहीं समझा। घर पहुँचकर वह उसको अपने कमरे में ले गई और स्वयं कुर्सी पर बैठ, उसको अपनी गोदी में बैठा, उसकी आँखें पोंछते हुए, पूछने लगी, "बेटा ! किसी के साथ तुम्हारी लड़ाई हुई है ?"

सुन्दर ने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया। अभी भी रोने से उसकी हिचकियाँ बँधी हुई थीं। वह बात नहीं कर सकता था। मिसेज़ पाल देख रही थी कि अभी भी उसके कपोल सूजे हुए हैं। प्रातःकाल तो सूजन बहुत ही अधिक थी और उस समय उसकी गालों पर उँगलियों के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते थे। इस समय पूरा दिन व्यतीत हो जाने पर उँगलियों के चिह्न तो मिट गये थे, परन्तु कपोलों की लाली और सूजन अभी भी विद्यमान थी।

कुछ देर प्यार देकर मिसेज़ पाल ने फिर पूछा, "यदि किसी ने मारा नहीं तो यह तुम्हारी गालों पर क्या हुआ है ?"

इस प्रकार का प्यार तो सुन्दर को कभी उसकी बुआ ने भी नहीं दिया था। मिसेज़ पाल की गोदी में बैठे हुए और अपने सिर को उसके वक्षस्थल पर रख, उसके प्यार के सुख के प्रभाव से उसमें कहने का साहस हो आया। उसने कहा, "मैट्रन ने पीटा है।"

"क्यों ? तुमने क्या किया था ?"

"मुझको नींद नहीं आ रही थी। मैं बिस्तर से उठा और कमरे से निकलकर बाहर मैदान में जा बैठा। चाँदनी छिटक रही थी। अपने घर पर भी मैं कभी-कभी चाँद को देखने कुटिया से निकल आया करता

था। इस प्रकार घंटों ही आसमान पर चाँद और तारों को देखता रहता था। मुझे इसमें बहुत ही आनन्द मिलता है।

"कल रात मैं मैदान में आकर, वहाँ पड़े एक पत्थर पर बैठ, अपने घर जैसा आनन्द ले रहा था कि हमारे अनाथालय की एक लड़की, मिस सिमसन आकर मेरे पास बैठ गई। मैं अभी विस्मय में उसकी ओर देख ही रहा था कि उसने मुझे अपनी भुजाओं में दबोच मेरा मुख चूम लिया। मैं स्वयं तो उससे दूर हटता था, पर वह मुझसे और अधिक चिपटती जाती थी।

"इसी समय मैट्रन वहाँ आ पहुँची। मुझको देख उसने कहा, 'सुन्दर !' इस पर वह लड़की मुझको छोड़ भाग गई। मैट्रन के हाथ में बेंत नहीं था। उसने मुझे जो चपत मारना आरम्भ किया तो एक के पश्चात् एक मारती ही गई। दोनों हाथों से दोनों गालों पर वह मारती ही रही। मैं इस सबका कारण समझ नहीं सका और चुपचाप मार खाता रहा। उसने मारना बन्द कर दिया। मैं समझता हूँ कि वह थक गई होगी। मेरे सिर में चक्कर आ रहा था और जब उसने कहा, 'जाओ, लेट जाओ' तो मैं अपने कमरे की ओर चल पड़ा। जब मैं भीतर लड़कियों के कमरे के सामने से गुज़रा तो बहुत-सी लड़कियाँ अपने कमरे के द्वार पर खड़ी थीं। मुझको लड़खड़ाते कदमों से जाते देख सब-की-सब खिलखिलाकर हँस पड़ीं और पश्चात् मैट्रन को आते देख, उन्होंने अपने कमरे का द्वार भीतर से बन्द कर लिया।

"आज प्रातःकाल सब बोर्डरों के सम्मुख मुझे खड़ा कर मेरा दोष वर्णन किया गया। यह कहा गया कि मैं रात को एक बजे, अपने बिस्तर से उठ बाहर लॉन में एक लड़की से गले मिलता तथा उसका मुख चूमता हुआ देखा गया हूँ। यह पाप है और बोर्डिंग हाउस के नियमों के विपरीत है। इस कारण इसको 'पब्लिक केनिंग' किया जाता है।

"मुझे इस सब झूठ पर रोष आ रहा था। मैं वहाँ से भाग जाना चाहता था। परन्तु बोर्डिंग हाउस के तीन लड़कों ने मुझे पकड़कर मेरा

मुर्गा बना दिया। मैट्रन ने पाँच बेंत गिनते हुए, अपने पूरे बल से मेरे चूतड़ों पर लगाये।"

इस वृत्तान्त को सुन मिसेज़ पाल का मुख क्रोध से लाल हो गया। उसने सुन्दर की पीठ पर हाथ फेरते हुए, उसके दोनों गालों को चूमकर कहा, "मेरा बेटा सुन्दर इस अपमान की चिन्ता नहीं करेगा। उसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। घर पर वह पढ़ नहीं सकता। यहाँ वह दस वर्ष में एम० ए० कर लेगा। तब वह किसी स्थान पर बड़ा अफसर बनेगा और इस समय के सब कष्टों को भूल जायगा।"

इस पर भी सुन्दर इस 'पब्लिक केनिंग' के अपमान को भूल नहीं सका। इस अपमान के साथ उसको एक और बात का पता चला।

वह मिसेज़ पाल से पाठ पढ़, आठ बजे बोर्डिंग हाउस में वापस आया तो उसके कमरे का एक साथी उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। सुन्दर के पहुँचते ही वह उसको लॉन में एक ओर ले गया और पूछने लगा, "सुन्दर! क्या हुआ था कल रात?"

सुन्दर ने वही वृत्तान्त, जो उसने मिसेज़ पाल को बताया था, अपने साथी को बता दिया। लड़के का नाम 'कृष्ण रॉबर्ट' था। वह पन्द्रह वर्ष की आयु का युवक था और कालेज में पड़ता था। सुन्दर की बात सुनकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। सुन्दर ने समझा कि शायद वह उसकी बात पर विश्वास नहीं कर रहा है। इससे वह डाइनिंग हाल की ओर घूमा तो रॉबर्ट ने सुन्दर के कंधे पर हाथ रखकर उसे रोक दिया। उसने कहा, "सुन्दर! मुझे तुम पर विश्वास है। मैं जानता हूँ कि तुम हमारे रिवाजों को जानते नहीं हो। हम तो जब भी किसी लड़की से मिलना चाहते हैं, तो चाँदनी रात में उससे लॉन में नहीं मिलते। हम उसको बरामदे के किसी अँधेरे कोने में ले जाते हैं। मिस सिमसन इस बात को जानती है कि उसको लॉन में तुम्हारे पास कभी नहीं आना चाहिये था। मुझको विश्वास है कि सिमसन ने जान-बूझकर तुमको फँसाने के लिये यह किया है।"

सुन्दर इस बात को समझ गया। इससे तो उसको इस पूर्ण स्थान, वातावरण तथा यहाँ के निवासियों से घृणा हो गई। उसकी आँखों में फिर आँसू उमड़ आये। उसने केवल यह कहा, "ऐसा उसने क्यों किया ? मैंने तो कभी किसी से द्वेष किया नहीं।"

'मैं जानता हूँ उसने यह क्यों किया है। वह वास्तव में तुमसे प्यार करती है और तुमसे मिलना चाहती है। वह समझती है कि इससे तुम्हारे मन में उसके प्रति मुहब्बत पैदा होने लगेगी। जिसके कारण तुम्हारा अपमान हुआ है, उससे तुम बदला लेना चाहोगे और एक लड़का किसी लड़की पर विजय प्राप्त करके ही अपने अपमान का बदला पूर्ण हुआ मान सकता है।"

सुन्दर को रॉबर्ट की बात पर विश्वास नहीं आया। वह लड़कियों के विषय में कुछ अधिक नहीं जानता था। इस पर भी वह समझता था कि कोई लड़की इस प्रकार सोच नहीं सकती, जैसा कि रॉबर्ट ने बताया है। इस पर भी यह तो सत्य ही था कि वह पीटा गया था। उसका मिस सिमसन से कोई सम्बन्ध नहीं था और वह स्वयं ही उसके साथ ऐसा अश्लील व्यवहार करने लगी थी। सबसे बुरी बात उसे यह लगी कि उससे इस विषय में एक शब्द तक नहीं पूछा गया और उसको दण्ड दे दिया गया। मन-ही-मन वह ग्लानि से भरता जाता था। वह समझता था कि उसका अपमान हुआ है और उसके साथ अन्याय हुआ है।

उसने रॉबर्ट के कथन का कुछ भी उत्तर नहीं दिया और खाने के हाल में चला आया। वहाँ वह भोजन पर बैठ गया। कुछ अन्य लड़के और लड़कियाँ पहले से ही बैठे खा रहे थे। उसके वहाँ पहुँचते ही सब लड़कियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। हँसने वालियों में सिमसन सबसे आगे थी।

इससे तो उसकी भूख ही मर गई। यद्यपि खाना परोसा जा रहा था, परन्तु वह लड़कियों को टेढ़ी दृष्टि से अपनी ओर देख-देख हँसने पर, भीतर-ही-भीतर ग्लानि अनुभव करने लगा था। भोजन परसा गया

और उसने एक-दो ग्रास मुख में डाले भी। परन्तु ग्रास निगलने में उसको ऐसे कष्ट करना पड़ा, मानो वह शुष्क लकड़ी का भूसा निगल रहा हो। आखिर उसने खाना छोड़ दिया। दो घूंट जल पीकर वह मेज़ पर से उठ पड़ा, परन्तु द्वार के समीप मैट्रन को हाथ में बैंत लिये खड़ी देख, बैठ गया और परेशानी से रोटी की ओर देखने लगा।

जब सब खा चुके तो वह भी उठ पड़ा। सब बोर्डर द्वार में से निकल गये। वह भी बिना किसी के मुख पर देखे, वहाँ से चला गया। मैट्रन को देख उसे ऐसा अनुभव हुआ कि जो दो-तीन ग्रास भोजन के उसके पेट में गये हैं, वे भी उल्टी के द्वारा बाहर निकलने वाले हैं।

वह अपने सोने के कमरे में जाने लगा था कि सिमसन उसका मार्ग रोककर खड़ी हो गई। सुन्दर ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा तो वह बोली: "तनिक इधर आओ सुन्दर !"

"क्यों ?"

"मैं तुमसे क्षमा माँगना चाहती हूँ।"

"इसकी कोई ज़रूरत नहीं।"

"ज़रूरत है, तुमको नहीं, मुझको।" इतना कह उसने उसकी बाँह-में-बाँह डाल दी और उसे घसीटकर डाइनिंग हाल के पीछे वाले बरामदे में ले गई। वहाँ पहुँच उसने कहा, "मुझे क्षमा कर दो।" इतना कह उसने पुनः सुन्दर का आलिंगन कर उसका मुख चूम लिया। यह सब कुछ इतना जल्दी हो गया कि सुन्दर सँभल नहीं सका। सिमसन ने कहा, "क्षमा कर दिया है न ?"

इतना कह वह भाग गई।

[४]

सुन्दर सिमसन के आज के व्यवहार से और भी अधिक क्रुद्ध हो गया। वह उसी अँधेरे कोने में खड़ा, अपने और अधिक समय तक वहाँ रहने के विषय पर विचार करने लगा था। वह वहाँ के सुख-आराम, मिसेज़ पाल के स्नेह का विचार करता था और अपने सबके सामने पीटे

जाने से किये गये अपमान पर विचार करता था। अब यह रॉबर्ट और सिमसन के व्यवहार ने उसके मन में वह स्थान छोड़ने के निश्चय की पुष्टि ही की थी। यौन आकर्षण की अनुभूति उसके शरीर में होने लगी थी। इस अनुभूति की पुष्टि मिली थी स्कूल और बोर्डिंग हाउस के वातावरण से। उसके साथी लड़के, उसके सामने निस्संकोच लड़कियों की बातें करते रहते थे और उनसे मिलने के उपायों पर विवेचना करते थे। कई बार लड़के, जब मैट्रन उनको पीटती, तो उसमें गर्व का अनुभव करते और उसका वर्णन अपने साथियों के सम्मुख करते थे। किसी लड़की के लिये पीटा जाना उनके लिए गौरव का विषय होता था।

सुन्दर के बाबा ने उसे बताया था कि लड़कियों में से एक से विवाह किया जाता है। विवाह के पश्चात् पति-पत्नी हो जाते हैं। इसी प्रकार भगवान राम और सीता थे। विवाह से पहले सब लड़कियाँ बहिन समान होती हैं और विवाह के पश्चात् पत्नी को छोड़कर सब लड़कियाँ और स्त्रियाँ माँ के समान होती हैं। अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी भी लड़की अथवा स्त्री से प्यार करना पाप है और उस पाप का फल नरक में जाकर भोगना पड़ता है।

एक दिन एक लड़के ने उसको बताया था कि उसका अमुक लड़की से 'लव' हो गया है। सुन्दर ने पूछा, "लव क्या होता है ?"

वह लड़का विस्मय में सुन्दर का मुख देखता रह गया। पश्चात् यह स्मरण कर कि वह अंग्रेज़ी नहीं जानता, अभी नया रिक्रूट हुआ है, उसने पूछा, "प्यार करना जानते हो ?"

सुन्दर ने अपने बाबा का कथन स्मरण कर कहा, "वही जो पति-पत्नी करते हैं ?"

"हाँ, बस वही।"

"परन्तु तुम्हारा तो उससे विवाह हुआ ही नहीं।"

"हम विवाह का अभ्यास कर रहे हैं।"

उसको न तो इस अभ्यास का अर्थ समझ में आया और न ही

विवाह से पहले प्यार की बात रुचिकर प्रतीत हुई। उसने कहा, "यह ठीक नहीं है।"

"तुम हमारे समाज की बात नहीं समझते। कुछ दिन साथ रहोगे तो सब समझ में आने लगेगा।"

इस कथन ने तो सुन्दर के मस्तिष्क में विचारों की एक नवीन शृंखला उत्पन्न कर दी। क्या इनका समाज उससे भिन्न है, जिसमें वह रहता था ? उसने अपने घर पर अपने फूफा और बुआ को परस्पर प्यार करते कभी नहीं देखा था। उनको इस विषय पर कभी बात करते भी नहीं सुना था। हाँ, उसकी बुआ कहा करती थी कि सुन्दर अब सज्ञान हो गया है, इसके विवाह के लिये लड़की ढूंढनी चाहिये। फूफा कह दिया करता था, 'मंगत की बड़ी लड़की इसके योग्य है।' इस पर बुआ कहती—'वह लड़की कुछ मैले रंग की है, रूप-रेखा भी कोई तीखी नहीं है। हमारा सुन्दर तो बहुत ही सुन्दर बहू लायेगा।'

इसके अतिरिक्त प्यार के विषय में कभी बात नहीं होती थी। इसके विपरीत स्कूल और बोर्डिंग हाउस में तो जब भी दो लड़के पढ़ने अथवा खेलने से अवकाश पाते, प्रेम, लव, लड़की, सौन्दर्य, आँखें, टाँगें इत्यादि पर बातें करने लग जाते।

लड़के-लड़कियाँ इकट्ठे पढ़ते थे; परन्तु रहते पृथक्-पृथक् थे। दोनों के बोर्डिंग हाउस पृथक्-पृथक् थे और रात को वे अपने-अपने कमरों में बन्द कर दिये जाते थे। बोर्डिंग हाउस के दोनों विभागों की एक ही मैट्रन थी और वह उनके परस्पर व्यवहार की ख़ूब देखभाल रखा करती थी। इस पर भी लड़के लड़कियाँ ऐसे अवसर ढूंढ ही लेते थे, जब वे परस्पर मिल सकते थे।

इन सब बातों से वह यही समझा था कि वह एक नवीन समाज में आ गया है। इस पर भी वह अपने मन को इस नवीन समाज के रहन-सहन से सहमत नहीं कर सका था।

इस पर बेंत लगने की घटना हुई और वह भी सब बोर्डरों के

सम्मुख। इस प्रकार हुए अपमान से वह गलता जाता था।

रात वह सोया तो उसको नींद नहीं आई। उसको ऐसा अनुभव हो रहा था कि उसके सारे शरीर का रक्त सिर को चढ़ गया है। वह अपने को अत्यन्त दुःखी और हीन मानने लगा था। इससे बचने का उसको एक ही उपाय सूझ रहा था और वह था वहाँ से चला जाना।

उसने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि वह इस नवीन समाज में नहीं रहेगा। इस निर्णय के पश्चात् वह सोचता था कि यहाँ से कहाँ जाया जाय और किस प्रकार निकला जाय।

घर से तो वह देश-विदेश देखने की लालसा से निकला था। अब तक अल्मोड़ा का सेंट जोसफ़ स्कूल और अनाथ बच्चों के लिये बने बोर्डिंग हाउस के अतिरिक्त उसने अभी कुछ नहीं देखा था। इस कारण घर लौटकर जाने का विचार उसके मस्तिष्क में टिक नहीं सका। तो कहाँ जाय ? उसको कुछ सूझ नहीं रहा था। उसने अपने साथियों से दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता, बम्बई इत्यादि बड़े-बड़े नगरों के सौंदर्य का वृत्तान्त सुना था। परन्तु वे सब किधर हैं, यहाँ से कितनी दूर हैं, वहाँ पहुँचने का साधन क्या है ? इस प्रकार प्रश्नों की उलझन वह सुलझा नहीं सका।

अगला दिन रविवार था। गिरिजाघर जाना था। अतः जल्दी-जल्दी नित्य-कर्मों से निवृत्त होकर 'ब्रेक फास्ट' ले, ठीक नौ बजे वह लड़कों की पंक्ति में जा खड़ा हुआ। सवा नौ बजे वे पंक्तिबद्ध गिरिजाघर के लिए चल पड़े। लड़कियों की पंक्ति उनसे पृथक् थी। दो पंक्तियाँ साथ-साथ गिरिजाघर में प्रविष्ट हुईं और साढ़े नौ से पूर्व वे अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये।

स्कूल और बोर्डिंग हाउस के अधिकारी भी अपनी पत्नियों और बाल-बच्चों के साथ उनके लिये नियुक्त स्थानों पर बैठ गये। कुछ बाहर के लोग भी आये थे। वे भी साढ़े नौ बजे से पूर्व, अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये।

ठीक साढ़े नौ बजे घंटा बजा। दो मिनट तक वह बजता रहा। तत्पश्चात् आर्गन बजने लगी। मिस्टर पाल आर्गन पर किसी गीत की धुन बजा रहे थे। पाँच मिनट तक आर्गन बजता रहा। इस अवधि में उपस्थित गण चुप, शान्त और स्थिर भाव से बैठे थे। अब बोर्डिंग हाउस की कुछ लड़कियाँ, जो सबसे अगली पंक्ति में बैठी थीं, उठकर मंच पर आ गईं और धर्मगीत गाने लगीं। इनमें सिमसन भी थी। उसका स्वर अति मधुर और अन्य सबके स्वरों से अधिक रसमय था।

धर्मगीत में प्रभु यीशुमसीह से प्रार्थना की गई थी कि वे संसार में बसे सब अबोध बालकों को उँगली पकड़कर, स्वर्ग का मार्ग बताएँ। वे इनको दस मुख्य पाप कर्मों से बचाएँ।

पाँच मिनट तक गाना हुआ और पश्चात् पादरी फादर एवलीन मंच पर आ उपदेश देने लगा। उसने अंजील में से एक पद पढ़ा और फिर उसकी व्याख्या करनी आरम्भ कर दी। पद था—'भगवान की दस महान आज्ञाएँ। इनका पालन करने से मनुष्य का कल्याण होता है।'

फादर एवलीन ने इन दस आज्ञाओं की व्याख्या की। इनमें एक आज्ञा थी, जिसमें कहा गया था कि 'तुम को व्यभिचार नहीं करना चाहिए।' इस व्यभिचार शब्द की उसने व्याख्या की। इससे सुन्दर के मन में कुछ प्रकाश-सा होने लगा। ज्यों-ज्यों वह पादरी के कथन का अर्थ समझता गया, त्यों-त्यों वह बोर्डिंग हाउस के लड़के-लड़कियों के व्यवहार पर आश्चर्य अनुभव करता जाता था।

उपदेश समाप्त हुआ। उपस्थित बाहरी परिवारों ने दान के डिब्बे में कुछ सिक्के डाले और सब लोग गिरिजाघर से बाहर निकलकर परस्पर बातचीत करने लगे। पाँच-छः मिनट तक बताचीत होती रही। इस काल में रॉबर्ट सुन्दर से मिलने के लिए आया। उसने पूछा, "सुन्दर! कल सिमसन तुमसे मिली थी क्या?"

"हाँ, वह क्षमा माँगती थी।"

"तो तुमने उससे बेंत लगाने का बदला क्यों नहीं माँगा?"

"क्या माँगता ?"

रॉबर्ट खिलखिलाकर हँस पड़ा। सुन्दर विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। इस पर रॉबर्ट ने कहा, "तुम तो निरे गँवार हो। तुमको बहुत-कुछ सिखाना पड़ेगा। देखो सुन्दर ! सब लड़कियाँ तुमको बोर्डिंग हाउस के लड़कों में सबसे सुन्दर समझती हैं। वे सभी तुम्हारी मोटी-मोटी आँखों पर लट्टू हो रही हैं। इस कारण तुमको भी सबसे सुन्दर लड़की का चुनाव कर लेना चाहिए। अन्यथा भारी गड़बड़ मच जायगी।"

"क्या गड़बड़ मच जावेगी ?"

"प्रत्येक लड़की तुमको अपना मित्र बनाना चाहेगी और तुम में किसी के लिये रुचि न देख, वे परस्पर लड़ पड़ेंगी और फिर तुम्हारी झूठी शिकायतें होंगी। इससे शिकायत करने वाली लड़की की शिकायत होगी और सब लड़कों के रहस्य खुल जावेंगे। यह तो ठीक नहीं है।"

"अच्छी बात है, विचार करूँगा।"

सुन्दर ने विचार कर लिया कि वह उस स्कूल और बोर्डिंग हाउस को छोड़ देगा।

मिसेज़ पाल ने मिसेज़ स्मिथ से सुन्दर के विषय में पूछा तो उसने बताया कि वह रात को तीन-चार बार उठकर सब लड़के-लड़कियों को सोया हुआ देखा करती है। उस रात उसने सुन्दर का बिस्तर खाली देखा। वह तुरन्त लड़कियों के कमरे में गई। वहाँ सिमसन का बिस्तर खाली पड़ा था। वह टार्च लेकर उनको ढूँढने लगी। उसने उन दोनों को बाहर मैदान में पत्थर पर बैठे, परस्पर आलिंगन करते और मुख चूमते देखा तो वह क्रोध में उतावली हो वहाँ जा पहुँची। तब तक सिमसन भाग गई थी और उसने सुन्दर को वहीं पर खूब पीटा। अगले दिन सिमसन से पूछा तो उसने बताया कि वह पेशाब करने गई थी। सुन्दर कहीं से निकल आया और उसको बलपूर्वक घसीटकर मैदान में ले गया। वह कह रहा था, 'चाँदनी बहुत सुन्दर है और वह उसको लव करता है।'

"यह बयान सिमसन ने पवित्र पुस्तक पर हाथ रखकर, शपथ खाकर दिया था। इससे मुझको उस पर विश्वास करना ही पड़ा। अतः बोर्डिंग हाउस के नियमानुसार मैंने उसको 'पब्लिक केनिंग' किया था।"

मिसेज़ पाल इस कथा को सुनकर रो पड़ी। वह मन में विचार कर रही थी कि यह सब झूठ है। सुन्दर के कोमल मन पर इस झूठ का कितना बुरा प्रभाव पड़ सकता है। सिमसन तो लड़की है, अभी चौदह-पन्द्रह वर्ष की होगी। वह इस प्रकार के झूठ के परिणाम को समझ नहीं सकती। परन्तु मिसेज़ स्मिथ ने बिना भली प्रकार जाँच किये, दण्ड देकर सुन्दर के मन पर ईसाई धर्म की महिमा को कम कर दिया है।

वह विचार कर रही थी कि किस प्रकार मिसेज़ स्मिथ के मूर्खतापूर्ण व्यवहार के दुष्प्रभाव को कम करे। उसने निश्चय किया कि सोमवार को स्कूल में वह सुन्दर को समझावेगी और उसको धर्म की अच्छाई और मनुष्य की दुर्बलता में अन्तर बतायेगी।

घर पहुँच, उसने मदर मरियम के सम्मुख खड़े हो सीस झुका, मन ही मन प्रार्थना की। वह इस प्रार्थना में सुन्दर के लिये कुछ माँग रही थी। प्रार्थना के समय उसके होंठ निरन्तर हिल रहे थे। पश्चात् दाहिने हाथ से अपनी छाती पर 'क्रॉस' का चिह्न बना, वह अपने पति के पास चली गई।

[५]

अगले दिन सुन्दर क्लास रूम में नहीं आया। इससे मिसेज़ पाल को चिन्ता लग गई। क्लास छूटने पर वह कार्यालय में गई। वहाँ क्लर्क से उसने सुन्दर के विषय में पूछा तो उसको पता चला कि पिछले दिन बोर्डिंग हाउस से एक लड़का भाग गया है। उसकी पुलिस थाने में रिपोर्ट भी लिखा दी गई थी।

मिसेज़ पाल ने पूछा, "क्या नाम है उस लड़के का ?"

"नाम पता नहीं। सब कहते हैं कि उस लड़के को दूर हिमाचल के

समीप बस्तियों में से लाया गया था। मैट्रन स्मिथ का विचार है कि वह जंगली पुनः अपने घर की ओर लौट गया होगा। पुलिस ने उसकी खोज में दो कॉन्स्टेबल भेज दिये हैं।"

किन्तु सुन्दर अपने घर जाने के लिये नहीं लौटा था। वह गिरिजा-घर से निकल लड़कों की पंक्ति में बोर्डिंग हाउस में पहुँचा तो अवसर पा अहाते से निकल, नगर की ओर चल पड़ा। वह जानता था कि मैदान को ओर जाना चाहिये। उधर बस जाती है; परन्तु बस में जाने का भाड़ा देना होता है; भाड़ा उसके पास नहीं था।

इतना जानते हुए भी वह नगर में पहुँच, बस के अड्डे पर जा पहुँचा। बहुत-सी सवारियाँ चढ़ रही थीं। कुली उनका सामान उठाकर बस पर चढ़ा रहे थे। सुन्दर के मन में भी आया, यहाँ मज़दूरी कर कुछ रुपये इकट्ठे कर लेने चाहियें। इतने में एक भद्र पुरुष, एक स्त्री और एक लड़की के साथ रिक्शा पर आया। एक अन्य रिक्शा में उनका सामान लदा था। दोनों रिक्शा बस के अड्डे पर आ खड़ी हुईं। सुन्दर ने लपककर आगे बढ़ते हुए पूछा, "सामान उतारूँ साहब ?"

यह प्रश्न सुनकर वह पुरुष विस्मय में सुन्दर के मुख की ओर देखता रह गया। उस स्त्री ने कहा, "तुमसे नहीं उठाया जावेगा।"

"माँ जी ! उठा लूँगा।"

इस पर पुरुष ने पूछ लिया, "नये-नये काम करने आये हो ?"

"जी।"

"तो नौकरी कर लो।"

"क्या काम करना होगा साहब ?"

"घर की सफ़ाई, बाज़ार से सामान खरीदना और कई अन्य इसी प्रकार के कार्य करने होंगे।"

"कर लूँगा।"

"हमारे साथ बम्बई चलना होगा।"

"चला चलूँगा।" उसने अपने विस्मय को प्रकट न करते हुए कहा।

"कितने रुपये लोगे ?"

"जो आप उचित समझें, दे दीजियेगा ।"

"तुम्हारे माँ-बाप कहाँ हैं ?"

"मैं अनाथ हूँ साहब !"

"कहाँ रहते हो ?"

"सेंट जोसफ़ आर्फनेज में रहता था। आज वहाँ से चला आया हूँ ।"

"तो वे तुमको ढूँढ रहे होंगे ?"

"क्यों ढूँढेंगे ? मैंने उनका कुछ चुराया नहीं है। ये कपड़े उनके हैं, परन्तु जब मैं आया था, तब मेरे पास भी अपने कपड़े थे, जो उन्होंने उतार लिये थे ।"

अब तक एक अन्य कुली ने उनका सामान उतार लिया था और उसे वे बस पर चढ़ा रहे थे। स्त्री ने पुरुष को कुछ डाँटने के स्वर में कहा, "सामान को तो देखो ?"

इससे सुन्दर को खेद-सा हुआ। न तो सामान ही उठाने को मिला और जो नौकरी की बात चल रही थी, वह भी पूरी नहीं हो सकी। उस पुरुष ने कुली को कहा, "ए कुली ! सामान गिनकर रखना ।"

इतना कह उसने पुनः सुन्दर की ओर देखा, जो अब किसी अन्य के सामान उठाने के विषय पर विचार कर रहा था। इस समय उस पुरुष ने आवाज़ दी, "ओ लड़के ! इधर आओ ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

"सुन्दर !"

"सच ? ठीक, तुम सुन्दर हो। चलो, तुमको नौकर रख लिया। देखो, चोरी नहीं करोगे तो तुमको बहुत इनाम मिलेगा ।"

इतना कह उसने अपनी लड़की, जो स्त्री के पास खड़ी थी, से कहा, "भावना ! देखो यह सुन्दर है। इसको नौकर रख लिया गया है। अपना बैग इसको पकड़वा दो ।"

लड़की ने सुन्दर को देखा, परन्तु बैग नहीं दिया। पुरुष बस के

टिकट खरीदने के लिये चला गया था। उसकी स्त्री ने सुन्दर से पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

सुन्दर इस समय अपने मन में बम्बई नगर के उस चित्र पर मनन कर रहा था, जो उसने अपने मित्रों के मुख से सुन रखा था। वह इतना तल्लीन था कि उसे उस स्त्री का प्रश्न सुनाई ही नहीं दिया। उसका उत्तर उसकी लड़की ने देते हुए बताया, "माँ ! यह सुन्दर है।"

औरत ने विस्मय में लड़के के मुख की ओर देखकर कहा, "सुन्दर ? हाँ, है तो सुन्दर ही।"

साढ़े तीन टिकट खरीद लिये गए। भावना अभी दस वर्ष से छोटी थी, उसका आधा टिकट लिया गया।

वे लोग अल्मोड़ा से काठगोदाम और वहाँ से बरेली, तदनन्तर दिल्ली और वहाँ से बम्बई जा पहुँचे। यदि थाने में रिपोर्ट लिखाने वाला पुलिस को यह न बताता कि भागा हुआ लड़का अपने गाँव कैलाश के मार्ग पर गया होगा, तो पुलिस बस के अड्डे पर खोज करती। सम्भवतया वह काठगोदाम फोन भी करती। इससे सुन्दर पकड़ लिया जाता। परन्तु पुलिस ने रिपोर्ट के आधार पर दो सिपाहियों को कैलाश के मार्ग पर भेज दिया। इसी में उन्होंने कर्तव्य का पालन पूर्ण समझ, सन्तोष की साँस ली और सुन्दर बिना किसी विघ्न-बाधा के बम्बई पहुँच गया।

उस पुरुष का नाम यादवदेव त्रिक्रमजी था। वह बम्बई में एक कपड़ा मिल का मालिक था। अल्मोड़ा में भ्रमण के लिये आया हुआ था और दो सप्ताह वहाँ रहकर अब बम्बई वापस जा रहा था। साथ में उसकी पत्नी राधा और पुत्री भावना थीं।

भावना का कोई भाई नहीं था। यादवदेव ने सुन्दर को देखा तो उसको वह बहुत ही भोला-भाला तथा मेधावी प्रतीत हुआ। मार्ग में ही उसने सुन्दर का पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया था। सुन्दर ने बोर्डिंग-हाउस में अपने पीटे जाने तथा लड़कियों के व्यवहार का वृत्तान्त नहीं

बताया था। उसको अपने अपमान और लड़कियों की निर्लज्जता की बात बताने में संकोच हुआ था। उसने केवल यह बताया कि बोर्डिंग हाउस की मैट्रन बहुत ही क्रूर स्वभाव की स्त्री है। उसके व्यवहार से तंग आकर ही उसने वह स्थान छोड़ा है।

यादवदेव ने उससे पूछा, "कितना पढ़े हो ?"

"घर पर तो कोई पढ़ना-लिखना जानता नहीं था। मेरे फूफा सुमेर सेना में भर्ती हो, हिन्दी-उर्दू सीखकर आए थे। मैंने जब उनसे कहा था, मुझे भी यह सिखा दो तो कहने लगे कि उस झोंपड़ी में रहने वाले को इस पर मग़ज़पच्ची करने की ज़रूरत नहीं। अनाथालय में मिसेज़ पाल, स्कूल तथा घर पर पढ़ाया करती थीं। वे कहती थीं कि दो वर्ष में मुझे पाँचवीं श्रेणी जितना पढ़ जाना चाहिये। छः मास में उन्होंने मुझको अंग्रेज़ी की प्राइमर और आधी प्रथम पुस्तक पढ़ा दी थी। गणित में गिनती और पहाड़े, जोड़, ऋण तक सीख गया हूँ। इस समय गुणा और भाग का अभ्यास कर रहा था।"

"हिन्दी सीखे हो ?"

"वह क्या होती है ?"

"वह हमारे देश की भाषा है।"

"हमारा देश कौन-सा है।"

"भारत।" यादवदेव को इससे विस्मय हुआ। फिर यह स्मरण कर कि वह सर्वथा वीरान स्थान से आया है, चुप रहा। परन्तु इस पर सुन्दर के प्रश्न से तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। सुन्दर ने पूछा, "सुभाष बाबू कहाँ हैं ?"

यादवदेव कई मिनट तक सुन्दर के मुख पर देखता रहा। फिर कुछ विचारकर पूछने लगा, "तुम क्या जानते हो सुभाष बाबू के विषय में ?"

"मेरा फूफा भारत की स्वतन्त्र सेना में रहा है। वह सरकार का कैदी हो गया था। पीछे पण्डित जवाहरलालजी के आन्दोलन से वह

और उसके साथी छूट गये थे।"

"ओह ! तब तो तुम बिल्कुल असभ्य नहीं हो।"

यह सभ्यता और असभ्यता की विवेचना सुन्दर की समझ में नहीं आ रही थी। इससे वह बितर-बितर अपने मालिक का मुख देखता रहा।

[६]

यादवदेव ऑलम्पिक क्लॉथ मिल का मालिक था और बाईकुला में एक बहुत बड़े मकान में रहता था। घर में तो केवल तीन ही प्राणी थे। सेठ साहब, उनकी धर्मपत्नी राधा और लड़की भावना। इसके अतिरिक्त यादवदेव के भाई का एक लड़का रत्नलाल, अपनी पत्नी सुमित्रा के साथ उसी घर में रहता था। वह एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट आफिस में एक उच्चाधिकारी था। अपने चाचा के मकान में बहुत स्थान होने के कारण, बिना किराया दिये ही रहता था।

रत्नलाल का पिता अहमदाबाद में व्यापार करता था और अच्छा धनी आदमी था। इनके अतिरिक्त राधा का छोटा भाई मणिलाल भी उसी मकान में रहता था। मणिलाल की आयु लगभग बारह वर्ष की थी और वह भावना से दो श्रेणी आगे पढ़ता था। दोनों सेंट टॉमस स्कूल में पढ़ते थे। वे दोनों प्रायः मोटर में इकट्ठे ही स्कूल जाते और आते थे।

यादवदेव पूजा-पाठ में बहुत विश्वास रखता था। वह तथा उसकी पत्नी प्रति रविवार मन्दिर में जा, पूजा-पाठ कर दान-दक्षिणा दिया करते थे। धर्मोपदेश में उसकी भारी निष्ठा थी।

पूर्णिमा के दिन घर पर सत्यनारायण की कथा कराते थे और घर के तीनों प्राणी श्रद्धापूर्वक कथा का श्रवण करते थे। अब इनमें एक चौथा व्यक्ति सुन्दर सम्मिलित हो गया।

रत्नलाल तथा मणिलाल इस कथा-कीर्तन में रुचि नहीं रखते थे। वे कथा के समय प्रायः कहीं खिसक जाया करते थे।

सुन्दर को केवल दो काम बताये गये थे। एक तो तीनों व्यक्तियों के कमरों की सफाई करना। इन कमरों में अन्य नौकरों का आना वर्जित हो गया था। और दूसरा काम था बाज़ार से घर के लिये सौदा ले आना। यों तो एक रसोइया था। वह महाराज के नाम से पुकारा जाता था और सुन्दर के आने से पूर्व वही रसद-पानी का प्रबन्ध करता था। दस वर्ष से वह सेठ जी की नौकरी कर रहा था और इन दस वर्षों में एक दुबले-पतले युवक से बढ़कर पौने तीन मन का मोटा महाराज बन गया था। वह जब भी घर जाता था, एक-दो ट्रंक अन्यान्य वस्तुओं तथा कपड़ों के भरकर साथ ले जाया करता था।

इस वर्ष महाराज जब अपने घर जाने लगा तो सेठ जी को सन्देह हो गया कि इस बार एक ट्रंक कुछ बड़ा और सदा से अधिक भारी है। सेठ जी ने पूछ लिया, "महाराज ! बहुत-कुछ ले जा रहे हो इस बार ?"

"हाँ, सेठ जी ! भगवान की कृपा से आप जैसे दयालु स्वामी जिसे मिले हों, तो फिर क्यों न ट्रंक भारी हो जाय ?"

"महाराज ! तनिक दिखाओ तो सही कि हमारी दया की सीमा कहाँ तक पहुँची है।"

"सेठ जी ! दया तो एक असीम वस्तु है। इसकी तो कोई सीमा ही नहीं बाँधी जा सकती। लीजिये, आपकी दया है तो फिर सब कुछ है, फिर आपको दिखाने में क्या संकोच हो सकता है ?"

महाराज ने ट्रंक खोला। उसमें रेशमी और सूती साड़ियाँ थीं, सोने-चाँदी के आभूषण थे और बच्चों के लिये खिलौने भरे पड़े थे। महाराज के अपने वस्त्र थे और फिर ट्रंक के एक कोने में एक-एक तोले के सोने के पाँच टुकड़े रखे हुए थे।

महाराज को पचास रुपया मासिक मिलता था और रोटी-कपड़ा सेठ जी के घर से ही दिया जाता था। इस ट्रंक में तो केवल सोना ही पाँच सौ रुपये का था। सोने-चाँदी के आभूषण भी दो-तीन सौ रुपये

तक के थे। एक घड़ी थी, जो सौ रुपये से कम मूल्य की नहीं होगी। सब कुछ मिलाकर एक सहस्र रुपये का सामान था।

सेठ यादवदेव मुस्कराया और बोला, "महाराज! हमारे अतिरिक्त क्या कहीं अन्यत्र भी कुछ काम करते हो ?"

"हाँ, सेठ जी ! मैं एक छोटा-सा व्यापार भी करता हूँ।"

"ओह ! तो तुमको भी बम्बई की हवा लग गई है।"

"सेठ जी ! यहाँ रहते हुए दस वर्ष हो गए हैं। अनेकों निर्धनों को लखपति होते हुए देखा है और लखपतियों को निर्धन होते। मैं कई दुकानदारों का कमीशन-एजेण्ट के रूप में कार्य करता हूँ।"

"ओह ! सत्य ? किस-किस दुकानदार की एजेन्सी करते हो और इसके लिये तुम्हें समय कौन-सा मिलता है ?"

"जब आपके लिए बाज़ार से सामान खरीदने जाता हूँ तो दुकानदार मुझको बिक्री पर दस प्रतिशत कमीशन देते हैं और लगभग एक सहस्र रुपय की मैं उनकी मासिक बिक्री करा देता हूँ।"

"तब तो ठीक है। अर्थात् पिछले दस मास में तुमने कम-से-कम दस सहस्र रुपये की बिक्री कराई है। यह सन्दूक की वस्तुएँ कम-से-कम एक सहस्र रुपये के लगभग तो होंगी ही।"

'हाँ जी ! सब धन जो मैंने इन वस्तुओं पर व्यय किया है, वह ग्यारह सौ तीस रुपये थे।"

सेठ यादवदेव चुप कर रहा। उसने घर के लिये उस पूर्ण सामान का मूल्य आँका, जो महाराज के द्वारा लाया गया था। पिछले वर्ष वह लगभग तेरह सहस्र रुपये का था। इससे सेठ समझ गया कि महाराज उसके माल पर ही दूकानदार से दलाली लेता रहा है।

महाराज के घर जाने से पहले ही सुन्दर आ गया था और उसके पीछे वह माल खरीदकर लाने लगा। खाने-पीने का सामान, एक पाठशाला के निर्धन विद्यार्थियों के लिए अन्न, मासिक सदाव्रत के लिए अन्न, घी, चीनी इत्यादि, छोटा-मोटा कपड़ा और घर के लिए अन्य

आवश्यक वस्तुएँ, सब मिल-मिलाकर लगभग ग्यारह-बारह सौ रुपये महीने का होता था।

दस-बारह दिन में ही सुन्दर सब दुकानदारों से परिचित हो गया था और नियमित भाव पर माल लाने लगा था। मासिक बिल भुगतान करने गया तो दुकानदारों ने सुन्दर को कह दिया कि सेठ जी का पहला नौकर, महाराज उनसे दस प्रतिशत कमीशन लेता था।

सुन्दर ने कहा, "इस बार वह कमीशन आप बिलों में कम कर दीजिये।"

"यह हम नहीं कर सकते। ऐसा करने पर आगे आने वाले नौकर बिल कमीशन कटवाकर बनवायेंगे और फिर अपना कमीशन उससे पृथक् माँगेंगे।"

"तो अलग दे दीजिए।"

महीने के पश्चात् जब सुन्दर ने राधा को हिसाब बताया और अपने कमीशन के एक सौ तीस रुपये भी साथ रख दिये तो सेठानी समझ नहीं सकी। सुन्दर ने वे सब बातें, जो दुकानदार के साथ हुई थीं, बता दीं, किन्तु इस पर भी सेठानी जी कुछ समझ नहीं सकीं। रात को सेठ जी घर आये। राधा ने सुन्दर की सम्पूर्ण बात उनको बताई तो वह खिल-खिलाकर हँस पड़े। राधा ने पूछा, "क्या बात है जी!"

"तुम्हारी वह तुलसी की माला जपने वाला चोर इतने रुपये उस काम में से चुरा लेता था, जिसके लिए उसको हम वेतन देते थे।"

"सत्य! तब तो बहुत बेईमान था वह।"

"हाँ, तभी तो फूलकर कुप्पा हुआ जाता था।"

"आप सुन्दर को क्या वेतन दे रहे हैं?"

"अब तुम ही बताओ क्या वेतन देना चाहिये। मेरे विचार में तो वह दो सौ रुपये मासिक का कार्य कर रहा है।"

सेठानी हँस पड़ी और बोली—"घर के नौकर को दो सौ रुपया मासिक वेतन और सरकारी पढ़े-लिखे बाबू को एक सौ बीस रुपया!"

"हाँ राधा ! सरकारी बाबुओं को आता ही क्या है ?"

"वे बेचारे नित्य नौ घण्टे काम जो करते रहते हैं।"

"केवल चक्की पीसते हैं।"

"और यह क्या करता है ?"

"कभी रात के समय देखा करो कि वह क्या किया करता है।"

"क्या करता है वह ?"

"जब वह यहाँ आया तो हिन्दी का एक अक्षर नहीं जानता था। अंग्रेज़ी की पहली किताब पढ़ता था। उसको आये डेढ़ मास हो गया है। इस काल में वह हिन्दी की तीसरी पुस्तक पढ़ने लग गया है और अंग्रेज़ी की दूसरी।"

"कहाँ से और कब पढ़ता है वह ?"

"भावना से पढ़ता है और रात को सबक याद करता है।"

"तब तो वह बहुत अच्छा लड़का है।"

"हाँ, पर मैं भी चाहता हूँ कि उसका वेतन तो पचास रुपये ही ठीक रहेंगे और उसके कमीशन का रुपया तुम पृथक् बैंक में जमा करा दिया करो। किसी समय उसको दे देंगे।"

द्वितीय परिच्छेद

[१]

सुन्दर को सेठ यादवदेव की नौकरी में आये तीन वर्ष हो गये थे। इन तीन वर्षों में वह मैट्रिक के बराबर हिन्दी, अंग्रेज़ी, गणित, इतिहास और भूगोल पढ़ गया था। भावना अभी आठवीं श्रेणी में पढ़ती थी। राधा का भाई मणिलाल मैट्रिक में पढ़ता था। सुन्दर उसकी पुस्तकें लेकर पढ़ रहा था। एक दिन, सुन्दरलाल 'टेल्ज़ फ्रॉम शैक्सपियर' पढ़ रहा था। इससे पहले, कठिन शब्दों और वाक्यों के अर्थ वह भावना से पूछ लिया करता था। अब भावना भी उसको समझाने में कुछ कठिनाई अनुभव कर रही थी। सुन्दर बहुत तेजी से पढ़ाई में उन्नति कर रहा था। भावना ने एक कठिन शब्द का अर्थ बताने में असमर्थता प्रकट की तो वह मणिलाल के पास जा पहुँचा।

मणिलाल ने उसके प्रश्न को सुनकर कहा, "सुन्दर ! तुम घर का काम किया करो। यह व्यर्थ की पुस्तकें पढ़ने से क्या होगा ?"

"मणिलाल भैया ! मैंने अर्थ पूछा है, पढ़ने के लाभ और हानि के विषय में तो मैंने कुछ भी नहीं पूछा।"

"मैं कोई शब्दकोष नहीं हूँ। जाओ, ऐसे माइने डिक्शनरी में देख लिया करो।"

"वह क्या होती है ?"

"एक पुस्तक होती है, जिसमें सब शब्दों के अर्थ लिखे हुए होते हैं।"

"सत्य ?"

"हाँ।"

सुन्दर अगले दिन अपने वेतन के रुपयों में से दस रुपये माँग, एक अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोष खरीद लाया। उसके लिये इससे ज्ञान-वृद्धि का एक द्वार खुल गया। जिस पुस्तक को भावना और मणिलाल से पूछ-पूछकर पढ़ने में एक मास लगता था, वह अब पन्द्रह दिन में ही समाप्त होने लगी।

परिणाम यह हुआ कि जब वह सोलह वर्ष का हुआ तो डिकन्ज़ की 'टेल ऑफ टू सिटीज़' सुगमता से पढ़कर अर्थ लगा सकता था। अब वह कार्लाइल की "फ्रैंच रेवोल्यूशन' पढ़ता था। इतना ही नहीं, अब भावना उससे पूछने आया करती थी।

भावना को स्मरण था कि किस प्रकार वह उनको अल्मोडा के बस-स्टैंड पर कुली का काम करने के लिए उत्सुक स्थिति में मिला था और तब वह सब देखने वालों को सुन्दर प्रतीत होता था। अब तो यह पूर्ण कौमार्यावस्था के ओज से पूर्ण, अद्भुत आकर्षण का केन्द्र था।

वह प्रातः पाँच बजे उठा करता था। अभी घर के प्राणी सोये होते थे कि वह स्नानादि से निवृत्त हो सेठ जी की बैठक और घर के अन्य कमरे साफ़ कर दिया करता था।

जब सेठ जी पूजागृह में आते तो सब पूजा का सामान यथास्थान सजा हुआ उन्हें मिलता। जब वे अपनी स्टडी रूम में जाते तो प्रत्येक वस्तु करीने से लगी और अपने-अपने स्थान पर रखी मिलती थी। सफाई की यह बात होती थी कि धूल का एक कण भी कहीं दिखाई नहीं देता था। इसी प्रकार सेठानी जी तथा भावना के कमरे भी साफ-सुथरे तथा सुसज्जित होते थे।

अब कुछ मास से सेठ जी ने सुन्दर को अपने कपड़े धोबी को देने और उससे लेने तथा उनकी मरम्मत कराकर सँभालकर रखने और आवश्यकता पर निकालकर देने का काम सौंप दिया था।

सेठ जी साढ़े नौ बजे मिल को जाते तो सुन्दर को अपने स्वाध्याय का समय मिल जाता था। इस समय तक भावना और मणिलाल भी स्कूल चले जाते थे। इस समय वह हिन्दी की पुस्तकें पढ़ता था। रामायण, महाभारत तथा भागवत इत्यादि पुस्तकें सेठ जी के पुस्तकालय से पढ़ने को मिल जाती थीं। वह हिन्दी शब्दकोष भी ले आया था और जहाँ-कहीं अर्थ समझने में कठिनाई होती थी, वह शब्दकोष की सहायता ले लिया करता था।

ठीक एक बजे पुस्तकों को अपने-अपने स्थान पर रखकर, वह पुनः सेवा के लिए तैयार हो जाता था। सेठ जी भोजन करने घर आया करते थे। जब वे सेठानी जी के साथ भोजन करते तो वह उनके पीछे खड़ा रहता और उनके भोजन परसने को देखता रहता।

वे भोजन कर उठ जाते तो वह स्वयं भोजन करता। सेठ जी ढाई बजे मिल लौट जाते तो वह रसोई का तथा सेठानी जी अथवा भावना दिन के समय, जो बता जाती थी, सामान खरीदने बाज़ार चला जाता। वहाँ से वह छः बजे तक लौटता। सबको सामान पहुंचाकर वह सेठ जी के आने से पूर्व उनकी बैठक को एक बार पुनः झाड़ देता और अन्य आवश्यक सामान ठीक कर देता।

सुन्दर घर का एक विश्वस्त व्यक्ति माना जाता था। वह भावना,

राधा इत्यादि के साथ ऐसे हिल-मिलकर रहता था, जैसे सेठानी जी का अपना जाया बच्चा हो। इस पर भी वह कुछ दिनों से घर के वातावरण में एक परिवर्तन अनुभव कर रहा था। रत्नलाल सुन्दर को टेढ़ी दृष्टि से देखता था। कभी सुन्दर कुछ बात कहता तो बिना कुछ उत्तर दिये मुख दूसरी ओर मोड़ लेता था। मणिलाल भी अब उससे दूर-दूर रहने लगा था। उसके पुकारने का ढंग भी बदल गया था। वह अब 'ओ सुन्दर' कहकर पुकारने लगा था।

सेठ यादवदेव और राधा अब उसकी बातों पर हँसते नहीं थे और जब वह काम-काज से एक कमरे से दूसरे कमरे में जाता, तो उनकी आँखें उसके पीछे-पीछे घूमती दिखाई देने लगी थीं। सुन्दर इस परिवर्तन का अर्थ नहीं समझ सका था। इस पर भी वह पूर्ववत् अपने कार्य में तत्पर रहता था।

घर में अब केवल भावना ही थी, जो उसे देखकर अभी भी मुस्कराती और उससे उसी ढंग से बातें किया करती थी, जैसे वह पहले करती थी। अन्य घर के प्राणी कहीं सामने होते तो वे इन दोनों को बातचीत करते देख, बितर-बितर देखा करते। एक-दो बार सुन्दर को उनकी तीव्र दृष्टि का अनुभव भी हुआ, परन्तु चूँकि वे कुछ कहते नहीं थे, इस कारण वह इसको अपने मन का भ्रम मान चुप रह जाता था।

वास्तव में एक काष्ठा का समय आ रहा था। एक दिन रात का भोजन करते समय सुन्दर, सदा की भाँति वहाँ उनके पीछे आकर खड़ा हुआ तो सेठ जी ने कह दिया, "सुन्दर! अब तुमको इस प्रकार यहाँ आकर खड़े होने की आवश्यकता नहीं है।"

"तो क्या आप मुझे नौकरी से निकालने का विचार कर रहे है ?"

सेठ जी ने मुस्कुराकर कहा, "नहीं सुन्दर! मैं तुम्हारी तरक्की करने का विचार कर रहा हूँ। मैंने सुना है कि तुम शैक्सपियर पढ़कर उस पर टीका-टिप्पणी करने लगे हो ?"

"जी नहीं, मैं स्वयं को अभी इतना योग्य नहीं समझता।"

"परन्तु मैंने तुम्हारे शैक्सपियर पर लिखे नोट्स देखे हैं। बहुत अच्छे लिखे हैं। हमारी भावना तो उन्हें समझ भी नहीं सकती।"

"जी, इसमें कारण है। वह अभी तेरह वर्ष की बच्ची है। मैं सोलह वर्ष का हो रहा हूँ। शैक्सपियर मानव उद्गारों के विषय में लिखता है। मैं भावना से अधिक जीवन की ऊँच-नीच देख और सह चुका हूँ। इस कारण जो मैं समझता हूँ, वह उसके समझने से भिन्न है। मैं समझता हूँ कि यदि मुझसे भी बड़ी आयु का कोई व्यक्ति हो, तो मुझसे भी अधिक समझेगा। मानव-मन एक अथाह सागर है। इसकी भावनाओं में जितनी गहरी डुबकी कोई लगानी जानता हो, उतने ही अधिक रत्न उसे प्राप्त होंगे।"

सेठ सुन्दर की बात नहीं सुन रहा था। वह तो उस सुन्दर की मूरत को स्मरण कर रहा था, जिसको वह नौकर रखने के लिए साथ लाया था। वह अनपढ़, पहाड़ी लड़का अब शैक्सपियर पर टिप्पणी करने लगा था।

'देखो सुन्दर! कई दिन से मैं विचार कर रहा हूँ कि तुम्हें मिल में किसी काम पर लगा दूं। परन्तु तुम्हारी योग्यता तुम्हारी आयु की अपेक्षा बहुत अधिक है। इस कारण जो भी काम तुम्हारी योग्यता के अनुसार है, वह तुम्हारी आयु वाले को दिया नहीं जा सकता।"

"मैं तो इससे यह समझा हूँ कि अब आपको मेरी सेवाओं की आवश्यकता नहीं रही।"

"नहीं, यह बात नहीं सुन्दर! इधर सामने आकर बैठो।" उस समय खाने की मेज़ पर सेठ, सेठानी और भावना बैठे थे। भावना अपने माता-पिता के बीच बैठी थी। सुन्दर उनके साथ बैठकर भोजन करने में संकोच करता था। ऐसा पहले कभी हुआ भी नहीं था। इस कारण सुन्दर ने कहा, "आप भोजन करिये। मुझे यहाँ खड़ा होने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो रहा है।"

"कष्ट का प्रश्न नहीं सुन्दर! तुम आज हमारे साथ ही भोजन

करो ।"

अभी भी संकोचवश सुन्दर वहीं पीछे खड़ा था। भावना हँस पड़ी। हँसकर बोली, "बैठो न ! पिता जी की आज्ञा का पालन नहीं करते ?"

सुन्दर किसी प्रकार अपना साहस बटोर, घूमकर मेज़ की दूसरी ओर जाकर बैठ गया। बैरे को कह दिया गया कि सुन्दर के लिये भी खाना ले आवे।

अभी खाना परसा ही जा रहा था कि रत्नलाल और उसकी पत्नी आ गये। रात का खाना वे प्रायः सेठ जी के साथ ही बैठकर खाया करते थे। कभी सिनेमा या क्लब गये हों तो बात दूसरी थी। आज वे आये और सुन्दर को मेज़ पर बैठा देख तथा उसके सामने भी खाना रखा देख, खड़े-के-खड़े ही रह गये।

सेठ यादवदेव उनके मन की भावना को समझता तो था, परन्तु उस ओर ध्यान न देते हुए कहने लगा, "खड़े-खड़े क्या देख रहे हो रत्नलाल ?"

"कुछ अस्वाभाविक प्रतीत हो रहा है। आज सुन्दर को यह मान-प्रतिष्ठा किस उपलक्ष्य में दी जा रही है ?"

"इसका तुम्हारे खाने से क्या सम्बन्ध है ? भोजन महाराज ने ही बनाया है।"

"चाचाजी !" रत्नलाल ने अभिमानयुक्त मुद्रा में कहा, "मैं एक सरकारी अफसर हूँ। मुझको डेढ़ सहस्र रुपया वेतन मिलता है। मेरे साथ बैठकर राज्य के मन्त्रीगण खाना खाते हैं। ऐसी अवस्था में एक अज्ञात माता-पिता की सन्तान, दो-दो पैसे का सामान खरीदने के लिये रखे नौकर, अनपढ़, गँवार व्यक्ति के साथ बैठकर खाना खाने में मैं अपना अपमान समझता हूँ।"

'तो ऐसा करो रत्नलाल ! तुम···" सेठ अभी अपनी बात समाप्त भी नहीं कर पाया था कि सुन्दरलाल मेज पर से उठ खड़ा हुआ। उठ

कर उसने कहा, "भैया ! आइये, आप पहले खा लीजिये । मैं बाद में खा लूँगा।"

सेठ इस स्थिति से कुछ उद्विग्न-सा हो गया । उसने सुन्दर को कहा, "बैठ जाओ सुन्दर ! मैं आदेश देता हूँ, तुम यहीं पर बैठ जाओ।"

आदेश का शब्द सुनकर सुन्दर विस्मय में कभी सेठ के मुख की ओर और कभी रत्नलाल के मुख की ओर देखने लगा । सेठ ने रत्नलाल को कुछ कहने का अवसर न देते हुए कहा, "यह मेरा घर है। क्या मैं अपने घर में भी, अपनी इच्छा से किसी का मान नहीं कर सकता ?"

"कर सकते हैं चाचाजी ! आप इस छोकरे का मान कर लीजिये । हम कहीं अन्यत्र जाकर भोजन कर लेंगे।"

सेठ कुछ कहने ही वाला था कि रत्नलाल और उसकी पत्नी डाइनिंग हाल से निकल गये। उनको जाता देख सेठानी भी उठकर चली गई । सेठ अभी भी बैठा रहा । उसने बैरे से कह दिया, "माता जी का भोजन उनके कमरे में दे आओ।"

"और रत्नलाल बाबू जी का ?" बैरे ने पूछा।

"उनसे पूछ लो । कहें तो उनका भी उनके कमरे में दे आओ।"

[२]

सेठ, उसकी लड़की भावना और सुन्दरलाल ही डाइनिंग हाल में रह गये थे । सुन्दर की आँखों से आँसू बह रहे थे । वह समझ रहा था कि यह सब उसके कारण ही हुआ है । इस बात के समझने में कठिनाई नहीं थी कि उसके इस घर में स्थान के विषय पर मतभेद हो गया है। अपने मन में वह विचार करता था कि जिस परिवार ने उसके साथ इतना कुछ किया है, उसे एक पशु से मनुष्य बनने का अवसर दिया है, उसमें ही वह वैमनस्य का कारण बने, यह उचित नहीं ।

इस समय उसको अल्मोड़े के सेंट जोसफ़ स्कूल की अध्यापिका मिसेज़ पाल का वात्सल्य स्मरण हो आया था । वहाँ पर हुए अपमान से बचने के लिये जब वह भागा था, तो उसे मिसेज़ पाल से पृथक् होने

का भारी दुःख हुआ था। यहाँ सेठ यादवदेव के घर पर तो उसको न केवल वात्सल्यता मिली थी, प्रत्युत मान और विश्वास भी मिला था। यहाँ से जाने पर तो उसको न केवल दुःख ही होगा, प्रत्युत वह सेठ जी के भी दुःख का कारण बन जावेगा। इस पर भी अपमान सहन करने का सामर्थ्य उसमें नहीं था।

सेठ, भावना और सुन्दरलाल के सामने खाना परसा गया। सेठ ने एक ग्रास खाकर छोड़ दिया। भावना और सुन्दर ने तो छुआ भी नहीं। तीनों खाने से उठे और चुपचाप अपने-अपने कमरे में चले गये।

सुन्दर के लिये पिछले कई मास के खिचाव का कारण और उसका परिणाम स्पष्ट हो गया। वह अपने मन में निश्चय कर बैठा था कि अब वह इस घर को छोड़ देगा। वह इस समय विचार कर रहा था कि किस प्रकार छोड़ा जाय। वह पढ़ने से और पूर्वापेक्षा अधिक अनुभव होने से, उसको निश्चय करने में उतनी देर नहीं लगी, जितनी अल्मोड़ा के अनाथालय को छोड़ने में लगी थी।

उसने निश्चय किया कि वह एक चिट्ठी सेठ जी को लिखकर छोड़ दे। इस विचार के आते ही वह कागज़-कलम लेकर पत्र लिखने बैठ गया। उसने सेठ जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए लिख दिया, "मैं आपके परिवार में वैमनस्य का कारण बनकर कृतघ्न बनना नहीं चाहता। अतः मैं आज जा रहा हूँ।

"मैं यहाँ पर बेसरो-सामान आया था और वैसे ही जा भी रहा हूँ। इस पर भी आपके घर में रहकर जो कुछ मिला और जो अब मेरे मन और शरीर का भाग बन गया है, उसे मैं अपने से पृथक् नहीं कर सकता। मेरे शरीर में वृद्धि हुई है। मेरे मन का विकास हुआ है। ये मेरे साथ आपकी कृपा और सहिष्णुता की स्मृति बन मरणपर्यन्त रहेंगे।

"माता जी ने आज मुझको पचास रुपये दिये थे। वे व्यय नहीं हुए। उन्हें मैं मेज़ की दराज़ में रखे जा रहा हूँ।

"भावना बहन ने मुझे एक कलम दी थी। वह मैं साथ ले जा रहा हूँ। बहन का उपहार वापस करने का साहस मुझमें नहीं है। माता जी तथा भावना बहन को मेरा नमस्कार कह दीजियेगा।

"मेरे दोषों को क्षमा कर भुला दीजियेगा।

आपका पुत्र-तुल्य—"

वह अभी हस्ताक्षर करने ही लगा था कि पीछे से किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने घूमकर देखा—भावना खड़ी थी। उसने विस्मय में उसके मुख पर देखा तो भावना ने डबडबाई आँखों से कहा, 'मैं तुमको यहाँ से कभी नहीं जाने दूँगी।"

"क्यों ?"

"नहीं, बस मैं नहीं चाहती।"

"परन्तु क्यों ? क्या तुमको मेरा अपमान होता देख, कुछ अच्छा लगता है ?"

"मैं उस अपमान को मान में बदलने का विचार रखती हूँ।"

"कैसे ?"

"तुमसे अपने विवाह की घोषणा कराकर।"

"विवाह ? नहीं, यह नहीं होगा। तुम बच्चों की-सी बातें करती हो। छोड़ो मुझको। व्यर्थ की बात मत करो।"

"तुम नहीं समझते सुन्दर ! सुनो। इस झगड़े को चलते हुए बहुत समय हो गया है। यह तो तुम जानते ही हो कि मणिलाल मेरे साथ मोटर में स्कूल जाया करता था। पिछले वर्ष से वह स्कूल छोड़कर कालेज में भर्ती हो गया है। इससे हम दोनों का इकट्ठे स्कूल जाना बन्द हो गया था। दो मास हुए, एक दिन वह मेरे पास आया और मुझको मोटर में जुहू चलने के लिये कहने लगा। मैं पहले तो मानी नहीं, परन्तु उसके बहुत कहने पर मान गई। मोटर में ही उसने मेरे साथ सटकर बैठते हुए कहा, 'भावना ! तुम तो अब बहुत सुन्दर दिखाई देती हो।'

'मैंने कहा, 'यह तो अच्छी ही बात है।'

'मैं एक बात करने के लिये आज तुमको इधर लाया हूँ।'

'हाँ, बताओ, क्या कहना चाहते हो ?'

'पहले तुम बताओ, मैं तुमको कैसा लगता हूँ ?'

'मुझको तो तुम वैसे ही बन्दर-जैसे दिखाई देते हो, जैसे स्कूल में लगते थे।'

'तो क्या मेरी सूरत-शक्ल में कोई अन्तर नहीं पड़ा ?'

'कुछ विशेष तो दिखाई नहीं देता।'

'इस पर भी मैं लड़का हूँ। हमारे कालेज की कई लड़कियाँ मुझ पर डोरे डाल रही हैं। किन्तु मैं तो अपना जीवन एक लड़की से बाँधने का निश्चय कर चुका हूँ।'

'किससे ?'

'तुमसे।'

'मैं उसका अर्थ समझती थी। मुझे उसकी मानसिक प्रवृत्ति पर सन्देह हुआ था। इस पर भी बात न समझने का बहाना करते हुए मैंने कहा, 'मुझसे तो तुम पहले ही बँधे हुए हो। तुम मामा हो, मैं भानजी हूँ।'

'हट ! मैं तुम्हें अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ।'

'पर मामा, भानजी तो लड़की के समान होती है।'

'यह सब मूर्ख, असभ्य तथा अनपढ़ लोगों की बातें हैं। हम आज डेमोक्रेटिक और स्वतन्त्रता के युग में भी वैसी बातें करें, जैसे जंगली लोग प्रागैतिहासिक काल में किया करते थे, तो हमको चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिये।'

'कुछ भी हो, मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकती।'

'तो मैं बलपूर्वक तुम्हारा हरण करूँगा।'

'तुम मुझ पर बल-प्रयोग करोगे ?'

'क्यों, मैं तुमसे बलशाली नहीं हूँ क्या ?'

"इस पर मैंने अपने पूरे बल से एक चपत उसके मुख पर लगाई और ड्राइवर को गाड़ी रोकने को कहा।

"ड्राइवर हमारी बातें सुन रहा प्रतीत होता था। उसने हँसकर गाड़ी खड़ी कर ली और नीचे उतर, गाड़ी का द्वार खोल, मणिलाल को कहने लगा, 'मामाजी ! आप अगली सीट पर आ जाइये।'

"मणिलाल चुपचाप भीगी बिल्ली की भाँति, आगे ड्राइवर के पास जा बैठा। जब हम लौटकर घर पहुँचे तो सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उसने कहा, 'मैं जानता हूँ तुम सुन्दर को पसन्द करती हो।'

'बकवास बन्द करो।" इतना कह मैं जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़ गई।

"मैंने उसी रात पिताजी को पूर्ण वृत्तान्त बता दिया। इस पर पिताजी बोले, 'तो मणिलाल का कहना सत्य है कि तुम सुन्दर को पसन्द करती हो ?'

"मैं इस बात का कोई उत्तर नहीं दे सकी। मैं वास्तव में तुमको मणिलाल से कई गुना अच्छा समझती हूँ। इस पर भी मैंने कहा, 'पिताजी ! विवाह माता-पिता करते हैं। जिसके साथ करियेगा, वही पसन्द हो जावेगा।'

"इसके पश्चात् माता-पिता में मेरे विवाह के विषय में बातचीत होनी आरम्भ हो गई। मणिलाल और माताजी में तो नित्य ही घुल-घुलकर बातें होती हैं। मणिलाल और रत्नलाल में भी गुप्तगोष्ठियाँ हो रही हैं।

"मुझे लगता है कि पिताजी का विचार तुमको अपना दामाद बनाने का हो रहा है। एक दिन माताजी और पिताजी में क्रोध में बातें हो रही थीं। मुझको अपने कमरे में भी बोलने का शब्द सुनाई दे रहा था। इस पर भी वहाँ बैठ मैं समझ नहीं रही थी कि किस विषय में बातें हो रही हैं। एकाएक मुझको मणिलाल का नाम सुनाई दिया। मेरे कान खड़े हो गये और मैं उनकी बातें स्पष्टतया सुनने के प्रलोभन को छोड़ नहीं सकी।

मैं उठकर गई ग्रौर उनके कमरे के द्वार पर कान लगाकर, उनका वार्तालाप सुनने लगी। पिताजी कह रहे थे, 'मुझको भावना ने सब बातें बताईं तो मैंने ड्राइवर से पूछा ग्रौर उसने भावना के कथन का समर्थन कर दिया। मैं उस बदमाश को इस घर से निकाल देना चाहता हूँ।'

'युवक है।' माताजी ने कहा, भूल कर बैठा है। इस ग्रवस्था में ग्रापने क्या कुछ नहीं किया होगा। ग्रब शक्ति क्षीण हो गई है तो पूजा-पाठ, धर्म-कर्म में ग्राप रुचि लेने लगे हैं।''

''पिताजी बोले, 'यह ठीक है राधा ! परन्तु मैंने ग्रपनी भानजी से सम्बन्ध जोड़ने का यत्न तो नहीं किया था। यह नैसर्गिक ज्ञान तो मुझको बचपन से भी था कि बहन, भानजी पत्नी नहीं बन सकती। हाँ, मैं 'सेंट टॉमस स्कूल' में नहीं पढ़ा था।'

'उस स्कूल में तो ग्रापकी लड़की भी पढ़ी है।'

'परन्तु उसका बीज भले ग्रादमी का प्रतीत होता है।'

'तो क्या, मणिलाल भले माता-पिता की सन्तान नहीं है ?'

'यह मैं क्या जानूँ ? उसके कर्म तो तुमने सुन ही लिये हैं।'

'तो ग्रपने बीज के पैदावार की बात भी सुन लो। वह ग्रभी से सुन्दर से सम्बन्ध स्थापित कर चुकी है।''

'मणिलाल ने कहा है न ?'

'नहीं, रत्नलाल कहता है। वह तो ग्रापके घर में सबसे ग्रधिक पढ़ा-लिखा ग्रौर समझदार लड़का है। उसको ही बुलाकर पूछ लो।'

'राधा ! यह झूठा लांछन तुम ग्रपनी लड़की पर लगाकर ठीक नहीं कर रही हो। इस पर भी सुनो। मैंने कई बार ग्रपने मन में विचार किया है। सुन्दर एक ग्रच्छा दामाद बन सकता है। परन्तु यदि तुम्हारा कहना सत्य हुग्रा तो उसका मुख काला कर घर से निकाल दूँगा।'

'झूठ ग्रौर सत्य का निर्णय कैसे होगा ?'

'मैं कल से चोरी-चोरी लड़की ग्रौर सुन्दर की गतिविधि पर नज़र रखूँगा। रत्नलाल को भी कहूँगा कि ग्रपने कहे हुए को सिद्ध करे।'

"ऐसी बात सिद्ध करनी और वह भी आप सदृश पक्षपाती व्यक्ति के सम्मुख, यदि असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य ही है।"

"तो बिना प्रमाण के मैं भी इतने बड़े घोर झूठ को मान नहीं सकता।"

"इसके पश्चात् पिता जी, माता जी, रत्नलाल और सुमित्रा भाभी तुम्हारे प्रत्येक कार्य की देख-रेख कर रहे हैं। पिता जी ने तुम्हारी पुस्तकों की तलाशी ली है। तुम्हारी लिखी कापियों को पढ़ा है और तुमको रात सोते हुए भी देखा है।

"तीन-चार दिन की बात है। मैं स्कूल गई हुई थी। तुम बाज़ार में सामान खरीदने के लिये गये हुए थे कि पिता जी और माता जी में कुछ बातें हुई प्रतीत होती हैं। उसी रात माता जी मेरे सोने के कमरे में आईं और मुझसे कहने लगीं, 'भावना, सुमित्रा के भाई मोहन से विवाह कर लो। इसमें तुम्हारा भी कल्याण होगा और हमारा भी।'

"मैंने पूछा, 'कैसे कल्याण होगा माँ! केवल इसलिये कि वह सुमित्रा का भाई है?"

'देखो भावना! वह रत्नलाल की पत्नी का भाई है। कई बार यहाँ आया भी है। उसके विषय में रत्नलाल कह भी रहा है। मैं इस सम्बन्ध को ठीक समझती हूँ।'

'परन्तु माँ! मेरे विवाह की चिन्ता क्यों लग गई अभी से? हमारे स्कूल की मुख्याध्यापिका पैंतीस वर्ष से कम नहीं होगी। अभी तक उन्होंने भी शादी नहीं की है। सुना है अब कहीं करने का विचार कर रही हैं। मेरी आयु तो अभी चौदह वर्ष की ही हुई है।'

'तुम्हारी मुख्याध्यापिका अवश्य ही किसी निर्धन घराने की होगी। यदि उसके बाप की भी कोई कपड़ा-मिल होती, तो उसका कभी का विवाह हो गया होता और अब तक उसके घर में पोता खेल रहा होता।'

'तो क्या धन होने से विवाह जल्दी होना चाहिये?'

"होना चाहिये अथवा नहीं, मैं इसकी बात नहीं कह रहा; परन्तु हो जाता है। फिर यह सुन्दर भी तो घर में है। एक वे माँ-बाप का लड़का लखपति बन जायेगा।'

"वह लाखपति क्यों बन जायेगा ?"

"तुम्हारे िता उससे तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं।"

"और माँ ! तुम क्या चाहती हो ?"

"मैं तो इतनी बड़ी सम्पत्ति एक नौकर पेशा आदमी, वह भी पर-देशी के हाथ में जाने देना नहीं चाहती।"

"तो माँ ! पिता जी और तुम मणिलाल को 'गोद' ले लो। पिता जी के लाखों उसको मिल जावेंगे और मैं, जो मेरे भाग्य में होगा ले लूंगी।"

"तुम्हारे पिता मानते नहीं है। अन्यथा यह बात तो आज से बहुत पहले हो चुकी होती।"

"तो माँ ! पिता जी को मना लो। मैं तो अभी विवाह नहीं करूंगी।"

"मेरा इस प्रकार स्पष्ट उत्तर सुनकर, माँ निराश-सी वहाँ से उठकर चली गई।"

[३]

भावना की बातें सुन सुन्दर गम्भीर विचारों में डूबा हुआ था। उसने भावना को पत्नी के रूप में कभी सोचा भी नहीं था। विवाह तो भगवान के किये से होता है और विवाह से पूर्व सब लड़कियाँ बहिन समान ही होती है। यह उसके बाबा का कथन, सदा उसके कानों में गूंजता रहता था।

जब वह अल्मोड़ा के अनाथालय में था, तब उसमें अभी यौन-प्रेरणा कुछ प्रबल नहीं हुई थी। अब उस बात को पाँच वर्ष व्यतीत हो चुके थे और अब वह यौवन की प्रेरणाओं को अनुभव भी करने लगा था।

साथ ही बम्बई में लड़के-लड़कियों का शृंगार कर घूमना, औरत-मर्दों का परस्पर मेल-जोल कामोत्पादक होता था, परन्तु सुन्दर के लिये बचपन के संस्कार प्रबल सिद्ध हो रहे थे और वह स्वयं पर नियन्त्रण रखता आ रहा था।

सुन्दर ने सेठ जी को जो पत्र लिखा था, लपेटकर अपनी जेब में रख लिया। उसने भावना से कहा, "परन्तु इस सब बात से यह कैसे सिद्ध हो गया कि मुझे तुमसे विवाह करना ही चाहिए ?"

"पिता जी चाहते हैं।"

"परन्तु तुम्हारी माता जी, तुम्हारे मामा जी, नाना, नानी, ताऊ, उनके लड़के रत्नलाल, भाभी सुमित्रा आदि कोई भी तो नहीं चाहता। वे सब मुझसे घृणा करते हैं।"

"मेरे लिए तो पिता जी मुख्य हैं।"

"वे मुख्य अवश्य हैं। इस पर भी विवाह एक ऐसा कार्य है जिसमें पूर्ण परिवार की सहमति आवश्यक है। जब तक सब, कम-से-कम परिवार के मुख्य-मुख्य लोग सहमत नहीं हो जाते, तब तक विवाह नहीं होना चाहिए।"

"वे सब हो जावेंगे। सुन्दर! तुम जाओ नहीं। यहीं रहो। समय पाकर सब कुछ हमारे अनुकूल हो जावेगा।"

सुन्दर गम्भीर विचार में पड़ गया। वह विचार कर रहा था कि सेठ यादवदेव के परिवार की कृपा के प्रतिकार में, वह इसमें वैमनस्य उत्पन्न कर किसी भी भांति ठीक नहीं कर रहा।

भावना ने सुन्दर के हाथ-पर-हाथ रखकर कहा, "मेरा कहा तो तुमको टालना नहीं चाहिये।" इतना कह वह सुन्दर की आँखों में देखकर बोली, सुन्दर ! कुछ समझो।"

यह कहकर वह उसके कमरे में से निकल गई। उसके अन्तिम वाक्य का अर्थ स्पष्ट था कि वह उससे प्रेम करती है।

अगले दिन भावना सो कर उठी और अपने नित्यकर्म में लग गई

जब बैरा उसके लिए ब्रेक-फास्ट लाया तो बोला, "भावना बीबी ! सुन्दर ने यह पत्र तुमको देने के लिये कहा है ।"

"वह कहाँ है ?"

"तो तुमको मालूम नही ? वह बहुत सवेरे ही रसोईघर में आया था और मुझको यह पत्र देकर बोला, "भावना बीबी को देना है।'

"मैंने उससे पूछा था कि वह कहाँ जा रहा है ? उसने बताया कि सेठ जी उसको किसी काम से पूना भेज रहे हैं ।"

'इतना कहकर वह चला गया। मैंने तो एक साधारण-सी बात समझी थी । किन्तु अब घर-भर में यह विख्यात हो रहा है कि सुन्दर नौकरी छोड़कर चला गया है। रत्नलाल बाबू कह रहे थे कि उसने चोरी की थी। रात चोरी पकड़ी गई तो वह चुपचाप निकल गया है।"

"मैंने यह पत्र तुमको देने से पूर्व सेठ जी को दिखाया था। वे एक ऐसे ही कागज पर लिखा और ऐसे ही लिफाफे में बन्द पत्र खोलकर पढ़ रहे थे, उन्होंने पत्र को लिया। इसी प्रकार बन्द ही इसको देखा और कहा, "यह भावना के लिये है। उसे दे दो।"

"मैंने कहा, "सेठ जी ! यह सुन्दर ने दिया है। मैंने सोचा कि आपके देखे बिना भावना बीबी को नहीं देना चाहिए।"

"क्यों ?" सेठ जी ने माथे पर त्योरी चढ़ा कर पूछा ।

"मैंने थथलाते हुए कहा, "रत्नबाबू कहते हैं कि वह चोर और बद-माश था।"

"सत्य ?"

"जी हाँ। मैं अपनी कसम खाकर कहता हूँ कि वे सभी नौकरों को ऐसा ही कर रहे हैं।"

"उन्होंने कहा, 'जाओ, यह पत्र भावना बीबी को दे दो।"

भावना की आँखें तरल हो रही थीं। इस पर बैरा ने पूछा, "बीबी ! क्या बात है ?"

"तुमने उसको चोरी करते देखा है ?" क्रोध से भावना ने पूछा ।

"बीबी जी ! माफ़ कर दो। मुझसे तो रत्नलाल बाबू ने कहा था। इसलिए मैंने सोचा, सेठ जी को बता दूँ।"

इस समय तक वह नाश्ते को तिपाई पर रख चुका था और बिना कुछ और अधिक कहे कमरे से बाहर हो गया। भावना ने नाश्ता करने से पूर्व सुन्दर का पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया। उसमें लिखा था—

"भावना बहिन !

मैंने तम्हारी सब बातों पर रात-भर मनन किया है और अन्त में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मैं तुम्हारा भाई बनकर ही तुम्हारे अहसानों का प्रतिकार भली-भाँति दे सकता हूँ। इस समय तो मैं एक अति निर्धन भाई हूँ, परन्तु परमात्मा ने कभी सामर्थ्य प्रदान किया तो फिर बहिन की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहूँगा।

"मैं तुम्हारे तथा तुम्हारे माता-पिता के स्नेह का यही प्रतिकार समझता हूँ कि इस समय चुपचाप, बिना किसी को बताये यहाँ से चला जाऊं। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं कृतघ्न हूँ। इसका अर्थ केवल यह निकलता है कि मुझको इसमें ही आप सबका कल्याण प्रतीत हुआ है।"

"बहन ! सदा सुखी रहो। यही मेरी भगवान से प्रार्थना है !"

पढ़ते-पढ़ते भावना की आँखों से आँसू गिरने लगे। पत्र की अंतिम पंक्तियाँ तो उसे धुँधली प्रतीत होने लगी थीं।

वह पुनः अपने पलंग पर जाकर लेट गई। नाश्ता करने तथा स्कूल जाने का उसे तनिक भी ध्यान नहीं रहा। वह सुन्दर के पिछले पाँच वर्ष के व्यवहार और जीवनचर्या पर विचार कर रही थी। वह सोचती थी कि जब उसे उसने अल्मोड़ा में बस के अड्डे पर कुली का काम करने के लिए तैयार देखा था तो वह कितना सुन्दर प्रतीत होता था, और जब उसके पिता ने उसको नौकर रखने के लिए कहा था, कैसे वह मन में इच्छा कर रही थी कि वह कहीं उनकी नौकरी करने से इन्कार न कर दे।

इसका अर्थ भावना को यह समझ आ रहा था कि उस पहली दृष्टि में ही वह उससे प्रेम करने लगी थी। आज अपने मन के भावों का विश्लेषण कर, वह पहली ही नजर में प्रेम का अर्थ समझ रही थी। उस समय वह अभी नौ वर्ष की थी और न तो प्रेम का अर्थ समझती थी और न ही विवाह, प्रणय आदि कुछ जानती थी। उस समय की मन की अवस्था का अर्थ वह आज भली प्रकार समझ सकी थी।

वह यह समझती थी कि सुन्दर को पढ़ाया करेगी। परन्तु दो वर्ष में ही वह इतना पढ़ गया था कि उसकी भूलों को सुधारने लगा था और अब तो वह किसी भी ग्रैजुएट से कम अंग्रेजी और अन्य विषयों का ज्ञान नहीं रखता। पाँच वर्ष में इतनी उन्नति उसकी प्रतिभा-विशेष की ही सूचक थी।

साथ ही वह कितना निष्ठावान है, जो एक लखपति का, अपनी लड़की से उसका विवाह मान जाने पर भी, अपने विचार में, उनके परिवार के कल्याण की भावना से प्रेरित, सब कुछ त्याग कर जा रहा है।

वह इस प्रकार अपने विचारों में लेटी हुई छत की ओर देख रही थी कि सेठ उसके कमरे में आया और उसको, हाथ में सुन्दर का पत्र लिये पलंग पर लेटे देख, विस्मय में खड़ा रह गया। तत्पश्चात् एकाएक बोला, "भावना ! स्कूल का समय हो गया है बेटी !"

"मैं आज स्कूल नहीं जाऊँगी।"

"क्यों ?"

"चित्त नहीं करता।" इतना कह उसने पिता की ओर से अपना मुख फेर लिया। पिता उसके पलंग पर बैठ, उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए पूछने लगा, "बहुत प्यार हो गया है उससे ?"

भावना ने वह पत्र, जो अभी भी उसके हाथ में था, पिता जी की ओर कर दिया। सेठ ने पत्र लेकर पढ़ा। पढ़कर उसने कहा, "देखो भावना ! मैं तो तुम्हारे लिए अपने परिवार की अवहेलना करने के

लिये भी तैयार था। परन्तु पराये लड़के पर तो मेरा अधिकार नहीं है।

"इस पर भी मैं तुमको बचन देता हूँ कि मैं उसको ढ़ूँढ़ निकालूँगा और उस पर अपनी दृष्टि रखूँगा। समय व्यतीत होने पर, आशा करनी चाहिये कि सब कुछ ठीक हो जायेगा।

'परन्तु तुम इसमें मेरी सहायता करो। उठो, पढ़ो-लिखो और स्वयं को उसके योग्य बनाने का यत्न करो। एक बात समझ लो, वह व्यक्ति धन-दौलत की कुछ भी परवाह नहीं करता। वह चरित्रवान, प्रतिभाशाली युवक है। वैसी ही तुम भी बन सको तो कुछ आशा की जा सकती है।"

[४]

सुन्दर रात-भर विचार करने के पश्चात् भी अपने निर्णय को बदल नहीं सका। वह मन में सोचता था कि यदि उसके विवाह का संयोग भावना से है, तो उसके घर छोड़कर चले जाने पर भी हो जावेगा।

साथ ही वह समझता था कि घर के नीच नौकर से सेठ का दामाद बनने में बहुत अन्तर है। इतनी ऊँचाई पर यदि एक ही छलाँग में चढ़ने का यत्न करेगा तो अवश्य गिरकर अंग-भंग कर लेगा। पहले उसको स्वतन्त्र रूप में, किसी मान-युक्त स्थिति पर पहुँचना चाहिए। तब यदि कोई भावना जैसी लड़की उससे विवाह की बात करे, तो यह प्रस्ताव विचारणीय हो सकता है।

जब भावना अपने भाव प्रकट कर उसके कमरे में से चली गई तो उसने सेठ जी का पत्र जेब से निकाला और नीचे हस्ताक्षर कर उसे एक बार पुनः पढ़ा और पत्र के नीचे यह और लिख दिया कि—

"मुझे भावना ने बताया है कि आप मुझ पर इतने दयालु हैं कि मुझको अपने परिवार में सम्मिलित करने का विचार रखते हैं। मैं स्वयं को इतनी बड़ी दया का पात्र नहीं समझता। अंग्रेज़ी की कहावत

है—डिज़र्व बिफोर डिज़ायर—अर्थात् किसी वस्तु को पाने से पूर्व, उसको प्राप्त करने की योग्यता ग्रहण करो। वह योग्यता मैं अभी स्वयं में नहीं देख पाता।"

इतना लिख उसने एक पत्र भावना को भी लिख दिया। दोनों पत्रों को बन्द कर उसने समय देखा। प्रात के चार बज रहे थे। वह शौचादि से निवृत्त हो, दोनों पत्र लेकर, अपने कमरे को बन्द कर बाहर निकल आया। रसोईघर में गया तो बैरा अपने लिये चाय बना रहा था। उसने बैरे को पत्र देकर कहा, "यह पत्र भावना बहिन को दे देना।"

बैरे ने इतने प्रातःकाल उसको जाने के लिये तैयार देखा तो पूछ लिया, "तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"सेठ जी किसी काम से मुझे पूना भेज रहे हैं।"

बैरा अभी उसकी बात पर विचार ही कर रहा था कि सुन्दर वहाँ से चला आया। घर के नीचे फाटक पर चौकीदार बैठा रामायण की चौपाई गा रहा था। उसने चौकीदार से कहा, "भैया ! यह पत्र सेठ जी को दे देना। इस समय वे पूजा कर रहे हैं, नहीं तो मैं स्वयं ही दे देता।"

"तुम कहाँ जा रहे हो सुन्दर ?"

"किसी काम से पूना जा रहा हूँ।"

वहाँ से निकलकर सुन्दर मैरीन ड्राइव की ओर चल पड़ा। अभी बस इत्यादि नहीं चल रही थी। सड़कों पर चलने-फिरने वाले भी अभी अपने घरों से नहीं निकले थे। पटरी पर सोने वाले दिन निकलने की प्रतीक्षा में करवटें बदल रहे थे।

बम्बई के ऊँचे-ऊँचे मकान प्रातःकाल के घुसमुसे प्रकाश में सुनसान भूतों के समान खड़े दिखाई दे रहे थे। सुन्दर इस विशाल नगर के लाखों लोगों के बीच स्वयं को सर्वथा अकेला पा रहा था। वह चला जा रहा था और कोई उसकी ओर देख भी नहीं रहा था।

एक ने देखा। वह था पुलिसवाला। मैरीन ड्राइव पर पहुँच, वह समुद्र की ओर बनी मुँडेर के समीप जाकर, उस धुँधले प्रकाश में सागर में हो रही उथल-पुथल को देखने के लिये खड़ा हो गया। वह अभी विचार कर रहा था कि एक पैसा भी लेकर वह चला नहीं, अब निर्वाह किस प्रकार किया जाय ? न जाने उसको कब और किस प्रकार का काम मिले ! तब तक वह रहेगा कहाँ और क्या खायेगा ?

वह अभी एक भी प्रश्न का हल नहीं सोच सका था कि पीछे से किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा। उसने चौंककर घूमकर देखा तो पीछे पुलिसवाले को खड़े पाया।

सुन्दर ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा तो पुलिसमैन ने पूछा, "यहाँ क्या कर रहे हो ?"

"दिल और दिमाग की सुस्ती निकाल रहा हूँ।"

"तुम चोर मालूम होते हो। तलाशी दो।"

"न दूँ तो ?" सुन्दर ने इस प्रकार कहे जाने को मज़ाक समझा था। परन्तु वह काँप गया, जब उसने कहा, "तो तुमको पकड़कर थाने ले जाऊँगा।"

इस पर सुन्दर को क्रोध चढ़ आया और उसने कहा, "तो ले चलो।"

पुलिसमैन ने उसे बाँह से पकड़कर कहा, 'चलो।"

"चलूँ क्यों ? ले चलना चाहते हो तो ले चलो।"

पुलिसमैन ने जेब से सीटी निकाल बजानी आरम्भ कर दी। पटरी पर सोये लोग जाग पड़े। दूर से दो और कान्स्टेबल सीटी की आवाज़ सुन भागते हुए आये। उन्होंने पूछा, "क्या हुआ है ?"

"यह चोर है।"

"तो ले चलो थाने।"

"यह अपने आप चल नहीं रहा है।"

अब सुन्दर की समझ में आया कि यह तो व्यर्थ में ही बवाल

खडा हो गया है। उसने शान्ति से पूछा, "तुम यह किस प्रकार कहते हो कि मैं चोर हूँ ?"

"तो तुम इस असमय में यहाँ क्या कर रहे हो ?"

"भाई, दिन चढ़ आया है। घर से घूमने निकला हूँ।"

"कहाँ रहते हो ?"

इस प्रश्न से तो सुन्दर घबराया। वह सेठ जी का पता देना नहीं चाहता था। इस कारण चुप कर रहा। इस पर दो नये आये सिपाहियों ने भी सुन्दर का हाथ पकड़ लिया और एक उसकी गर्दन पर हाथ रख उसे धकेलने लगा।

सुन्दर को वे थाने में ले गये और वहाँ ले जाकर उसके हाथों में रस्सा बाँध, उसको लोहे के सलाखों वाले कमरे में धकेल दिया गया। कमरे में चार-पाँच और भी बन्दी थे। कमरे के एक कोने में एक पेशाब कर रहा था। कमरे में पेशाब की दुर्गन्ध भरी हुई थी। सुन्दर अभी भी विचार कर रहा था कि सेठ जी का पता बताये अथवा नहीं। इसी बीच सिपाही ने दरवाज़ा बन्द किया और दफ्तर में रिपोर्ट लिखाने चला गया।

दिन के ग्यारह बजे। हवालात का दरवाज़ा खुला और उसको अन्य बंदियों के साथ निकाल कर थानेदार के सामने उपस्थित किया गया। सुन्दर सबसे पीछे खड़ा था और सब बन्दियों से पूछे जाने वाले प्रश्न और उनके उत्तर सुन रहा था।

एक आँख से काना और टेढ़े मुख वाला व्यक्ति सबसे पहले था। उसको देखकर थानेदार मुस्कराया। वह बन्दी भी खिलखिलाकर हँस पड़ा। हँसते समय उसका मुख अति भयंकर दिखाई देता था।

"तो तुम घर पर आराम से नहीं बैठ सकते ?" थानेदार ने पूछा।

"हजूर ! घरवाली घर बैठने दे तो बैठूं।"

"क्या कहती है वह ?"

"वह पाँच रुपये रोज़ माँगती है। बताइये मैं कहाँ से दूं ?"

"ओ पटवर्द्धन !" उसने सिपाही को आवाज़ दी और कहा, "इसको दलेल दो।"

एक हृष्टपुष्ट सिपाही आगे बढ़ा, बंदी को पकड़कर साथ के कमरे में ले गया। थानेदार ने दूसरे बंदी को देखकर पूछा, "क्या नाम है ?"

'शेरा"

"पाँच सौ का मुचलका भरो।"

अब तीसरा आदमी आया। थानेदार ने उसको देख माथे पर त्यौरी चढ़ाकर पूछा, "तुम फिर आ गये हो ?"

"हुज़ूर ! जबरदस्ती पकड़ लिया गया हूँ। मैं तो सदा खिदमत के लिये हाजिर रहता हूँ।"

"अच्छा, इसे साथ वाले कमरे में चले जाओ।"

इस प्रकार तीन-चार और बन्दियों का निपटारा कर सुन्दर की बारी आई। उसको देख थानेदार ने सिपाही से कहा, "यह तो कोई नया पक्षी दिखाई देता है ?"

"हाँ हुज़ूर।"

'क्यों पकड़े गये हो ?" उसने सुन्दर से पूछा।

"नहीं जानता साहब !"

"इसकी रिपोर्ट लाओ।" उसने सिपाही से कहा।

पुलिसवाला दफ्तर से एक रजिस्टर उठा लाया। उसमें लिखा था—सुन्दर, पुत्र साधू, रहने वाला गढ़वाल का, मैरीन ड्राइव पर सन्देहात्मक स्थिति में पकड़ा गया।

थानेदार रिपोर्ट पढ़ माथे पर त्यौरी चढ़ा, पुलिसवाले से बोला, "हरामी यह भी नहीं जानते कि रिपोर्ट किस प्रकार लिखी जाती है ?"

पुलिसमैन सम्मानयुक्त मुद्रा में सामने खड़ा रहा। इस पर थानेदार ने कुछ विचारकर सुन्दर से पूछा, "कोई वाकफियत दे सकते हो ?"

इस पर सुन्दर अपने सेठ का नाम बताने के लिये विवश हो गया।

थानेदार ने उसी समय सेठ को टेलिफोन कर पूछा, "सेठ यादवदेव जी हैं क्या ?"

"मैं बोल रहा हूँ।"

"आप किसी सुन्दर नाम के व्यक्ति को जानते हैं ?"

"हाँ, क्या हुआ है उसको ?"

"वह सन्देहात्मक रूप में मैरीन ड्राइव पर घूमता हुआ पकड़ा गया है। मैं थाने से एन० सी० पाण्डे, थानेदार बोल रहा हूँ।"

"देखिये, वह हमारा विश्वस्त कर्मचारी है। हम उसको प्रातःकाल से ही ढूँढ रहे हैं। उसे छोड़ दीजिये। मैं अपना एक आदमी भेजता हूँ, आप उसके साथ उसको कर दीजियेगा।"

थानेदार ने सुन्दर को कहा "सामने बेंच पर बैठ जाओ।"

सुन्दर के हाथ का रस्सा खोल दिया गया। वह बेंच पर बैठ गया। उसका विचार था कि सेठजी स्वयं आयेंगे और उसको समझा-बुझाकर वापस ले जावेंगे। वह मन में विचार कर रहा था कि किस प्रकार उनसे छुट्टी माँगेगा। उसको सेठ जी के घर से निकलते ही पकड़े जाने पर बहुत लज्जा लग रही थी और वह कोई उपाय नहीं सोच पा रहा था। आज के अनुभव के पश्चात् वह यह भी नहीं समझ सका कि जेब में बिना एक भी पैसे के वह निर्वाह किस प्रकार कर सकेगा ?

लगभग आधे घंटे की प्रतीक्षा के पश्चात् एक प्रौढ़ावस्था का व्यक्ति धोती, कुरता, कोट, काली टोपी तथा चप्पल डाले हुए थाने में आया और जेब में से एक पत्र निकालकर थानेदार को देते हुए उसने कहा, "मुझे सेठ यादवदेव जी ने भेजा है।"

"ओह ! वह आपका आदमी बैठा है।"

वह आदमी सुन्दर के पास बेंच पर आया और बोला, "तुम ही सुन्दर हो ? चलो, मुझे सेठ जी ने भेजा है।"

सुन्दर समझ गया कि सेठ जी ने मिल का कोई कर्मचारी भेजा है। वह उठकर उस व्यक्ति के साथ चल पड़ा। थाने से निकलते हुए उस

आदमी ने कहा, 'तुम तो पूना जा रहे थे ?"

सुन्दर ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। थाने के बाहर सेठ जी की गाडी खड़ी थी। उस आदमी ने मोटर के पास खड़े होकर कहा, "मेरा नाम मोहनदास गाधी है। सेठ जी ने कहा है कि तुम्हारे वेतन के हिसाब में ये रुपये जमा हैं। तुम इनको रख लो ."

इतना कह मोहनदास ने एक नोटों का बण्डल अपने पोर्टमैण्ट्यू में से निकालकर सुन्दर के हाथ में देते हुए कहा, "इनको भीतर की किसी जेब में रख लो और सुनो, सेठ जी का कहना है कि तुम पूना चले जाओ। वहाँ कोई काम मिल जावेगा। और कभी किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो उनको लिख देना। अच्छा, अब तुम जाओ।"

बिना गिने ही सुन्दर ने नोटों का बण्डल अपनी जेब में रख लिया और रेलवे स्टेशन जाने के लिये एक गाड़ी कर उसमें सवार हो गया। वह अभी गाड़ी में बैठा ही था कि थाने के दरवाज़े पर खड़ा एक अन्य व्यक्ति, जो कुलियों के-से कपड़े पहने हुए था, एक अन्य गाड़ी में बैठ सुन्दर की गाड़ी के पीछे-पीछे चल पड़ा।

मोहनदास जब मिल में पहुँचा तो सेठ ने पूछा, "क्या करके आये हो ?"

"उसको छुड़ाकर रुपये दे, पूना का रास्ता दिखा आया हूँ।"

"और माधव ?"

"वह भी दूसरी गाड़ी में बैठ उसके पीछे चल दिया है।"

"ठीक है।"

[५]

भावना आज स्कूल नहीं गई थी। उसकी माँ इस पर उससे पूछने आई थी कि उसका स्वास्थ्य तो ठीक है। भावना को इस घटना से ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी माँ का बहुत दिनों से कुम्हलाया हुआ मुख आज खिल उठा है। माँ के पूछने पर भावना ने केवल इतना ही कहा, "माँ ! मैं ठीक हूँ।"

"तो स्कूल क्यों नहीं गई ?"

"छुट्टी करने के लिये मन किया है।"

"मध्याह्न का भोजन करने सेठ जी घर आये तो भावना ने एकान्त में पिता जी से पूछ लिया, "कुछ पता चला है पिता जी !"

"हाँ बेटी ! वह सड़कों पर बेमतलब घूम रहा था। अतः पुलिस ने उसे सन्देह में पकड़ लिया। थाने से उसके विषय में पूछताछ के लिये फोन आया तो मैंने मोहनदास को भेजकर छुड़ा दिया और उसके केवल वेतन का रुपया, जो उसने लिया नहीं था, उसके पास भेज दिया है। एक मिल के कर्मचारी को उसके पीछे लगा दिया है। वह उससे स्वतन्त्रता से मित्रता उत्पन्न करेगा और फिर उसका पथ-प्रदर्शन करेगा। मैं उसे अपने एक एजेन्ट नानूभाई सेवामल की दुकान पर नौकर करा दूंगा। पश्चात् हम देख लेंगे। तब तक तुमको खूब दिल लगा कर पढ़ना चाहिये।"

रात के समय सेठ साहब खाना खाने आये तो रत्नलाल और उसकी पत्नी सुमित्रा भी आ गई। मणिलाल तो पहले ही बैठा था।

सेठ जी ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया और खाना परसा जाने लगा। रत्नलाल से चुप नहीं रहा गया। भोजन करते हुए उसने कह दिया, "चाचा जी ! अपने और पराये में अन्तर पता चला कि नहीं ?"

"चल गया है।"

"पहाड़िये मीत किसके, भात खाया और खिसके।"

सेठ जी ने मुस्कराकर कहा, 'रत्नलाल ! सरकारी अफसरों में असभ्यता क्यों घुस आती है ?"

"किसमें असभ्यता आ गई है ?"

"तुम में। तुमने नौकरों को यह बताया है कि सुन्दर चोरी करके भाग गया है। कौन-सी वस्तु चुराकर ले गया है वह ?"

"ओह ? तो अभी भी उसका जादू सिर पर सवार है ?"

"हाँ; और मैं तुमको कह देता हूँ कि एक सप्ताह के अन्दर अपने

रहने का कहीं प्रबन्ध कर लो, अन्यथा इस घर का द्वार तुम्हारे और तुम्हारी बहू के लिये बन्द होने वाला है।"

"सत्य ?"

"हाँ, तुम जैसे अभिमानी, झूठे और मूर्ख के लिये न तो यहाँ रहने को स्थान है और न ही इस मेज़ पर खाने को अन्न।"

रत्नलाल ने खाना छोड़ दिया और बोला, 'आज ही से बन्द क्यों नहीं कर देते ?"

"इसलिये कि मैं तुम जैसा असभ्य नहीं हूँ।"

"चाचा जी ! मैंने भावना को गन्दी नाली में गिरते-गिरते बचा दिया है। यही अपराध है न मेरा ?"

'यह तो भविष्य बतायेगा। मेरा तुमसे झगड़ा इस कारण नहीं। तुमने कल झूठे अभिमान का प्रदर्शन किया था। आज तुमने असत्य भाषण किया है और अब तुम सुन्दर के चले जाने में अपनी बहादुरी प्रकट कर, मूर्खता कर रहे हो। इसका भावना से उसका विवाह होने अथवा न होने का किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है। तुम्हारे गुण तो एक पृथक वस्तु हैं।"

'मेरे गुणों का ज्ञान आपको कुछ दिन पश्चात् होगा।"

"तब तुमसे क्षमा माँग लूँगा और तुम्हारे साथ वर्तमान व्यवहार के लिये दण्ड भर दूँगा।"

रत्नलाल और सुमित्रा दोनों डाइनिंग हाल से निकल गये। मणिलाल भी खाना छोड़ चाचा-भतीजे की बातें सुन रहा था। जब रत्नलाल गया तो वह भी अपने स्थान से उठकर खड़ा हो गया। सेठ जी ने उसे खाना छोड़ते देखा तो कह दिया, "बरखुरदार ! तुम भी जाना चाहते हो ? चले जाओ। अपनी बहिन से पूछ लेना कि वह तुम्हारा बम्बई में कहीं प्रबन्ध कर सकती है अथवा नहीं।"

इस पर सेठानी ने मणिलाल को डाँट दिया। उसने कहा, "मणि ! बैठो, खाना खाओ।"

मणिलाल समझ गया और बैठ गया।

अगले दिन माधवराव पूना से लौट आया और सेठ जी के सामने हाथ जोड क्षमा माँगते हुए कहने लगा, "सेठ जी! वह मुझे धोखा दे गया है। कह नहीं सकता कि उसने क्या समझा। मेरा विचार है कि मुझसे पृथक् होने के लिये ही वह किसी रास्ते के स्टेशन पर उतर गया है।

"हुजूर! जब मोहनदास ने उसको समझा दिया तो मैं समझ गया कि मुझे किसके साथ रहना है। जब उसने विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन तक जाने के लिये घोड़ागाड़ी की तो मैंने भी कर ली। सेठ जी! लड़का बहुत ही समझदार है। उसने टिकट लेने के लिये रुपये टिकटघर के सामने नहीं निकाले। स्टेशन पर पहुँच, वह पेशाबघर में चला गया। लगभग पाँच मिनट के पश्चात् वह वहाँ से निकला। मेरा अनुमान है कि इस अवधि में वह वहाँ रुपये गिनता रहा होगा। क्योंकि जब वह बाहर आया तो उसका मुख खिला हुआ था। उसने पूना का थर्ड क्लास का टिकट लिया तो मैंने भी वहीं का टिकट ले लिया। मैं उसके पीछे-पीछे उसी डिब्बे में जा बैठा, जिसमें वह बैठा था।

"गाड़ी में बैठ जाने के पश्चात् उसने मेरी ओर घूरकर देखा। मैंने बीड़ी निकाली और सुलगाने के लिए उससे माचिस माँगने लगा। वह सिगरेट, बीड़ी नहीं पीता। इस कारण बोला, 'माचिस नहीं है।'

"मैं गाड़ी से उतरकर उससे बोला, 'मेरे स्थान का ध्यान रखना, मैं माचिस लेकर आता हूँ।"

"मैं माचिस लेकर वहीं आ बैठा। बीड़ी पीते हुए उससे बात आरम्भ करने के लिये पूछने लगा, 'बाबू! पूना जा रहे हो?'

"हाँ।" उसने संक्षेप में कहा।

"आप क्या वहीं रहते हैं?" मैंने उससे बिलकुल अनभिज्ञता प्रकट करते हुए पूछा।

"उसने विस्मय में मेरे मुख पर देखा और फिर मुस्कराकर बोला,

'नहीं, वहाँ किसी काम के लिये जा रहा हूं।'

"मैंने हँसकर कहा, 'परन्तु लोग तो काम ढूंढने के लिये बम्बई आते हैं ?'

'बम्बई की जलवायु मेरे अनुकूल नहीं बैठी।'

'चाय कम पीते होगे। चाय के बिना तो यहाँ कोई जी नहीं सकता।'

'मैं चाय नहीं पीता।' उसने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

'सिगरेट नहीं पीते, चाय नहीं पीते, शराब तो आजकल बिकती ही नहीं तो फिर जीते कैसे हो ? तभी तो जलवायु अनुकूल नहीं बैठा। हाँ, पूना बम्बई से अच्छा नगर है। वहाँ पेट ठीक रहेगा। मैं पूना का ही रहने वाला हूं। आप कहाँ ठहरने वाले हैं वहाँ जाकर ?'

'इस पर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, 'मैं तो परदेसी हूँ। कह नहीं सकता कि कहाँ ठहरूँगा। मुझको इतनी चिन्ता भी नहीं है। सड़क के किनारे सो रहूँगा। जब कोई स्थान मिल जायेगा तो रहने का स्थान भी ढूंढ लूँगा।'

"मैंने उससे कहा, 'बाबू ! पटरियों पर सोना तो कुलियों के लिए ठीक हो सकता है, परन्तु आप जैसे सफेदपोशों के लिये तो यह ठीक नहीं है। कोई सफेदपोश पटरी पर सोया मिल जाय तो पुलिस समझती है कि कोई जेबकतरा है। ऐसा मत करना बाबू !'

"फिर मैंने कुछ काल तक उसका मुख देखकर कहा, 'आप मेरे साथ चलिये। जब नौकरी लग जावेगी तो रहने के लिये भाड़ा दे देना।'

'इससे आपको बहुत कष्ट होगा।'

'नहीं, कष्ट की कोई बात नहीं। मेरे पास एक मकान है। बाप-दादाओं का बनाया है। उसमें एक कोठरी तुमको दे दूंगा। और देखो बाबू ! मैं तुम्हारे काम-धन्धे के लिये भी मदद कर सकता हूँ। हमारे सेठ हैं। उनकी कपड़े की बहुत बड़ी दुकान है। उनसे कहूँगा तो निश्चय ही वे कुछ-न-कुछ आपके लायक काम निकाल लेंगे।'

'इससे वह गम्भीर विचार में पड़ गया और उसने मेरी बात का कुछ उत्तर नहीं दिया। गाड़ी चल पड़ी थी और खटाखट भागने लगी थी। वह सीट के साथ ढासना लगाकर, आँखें मूँद बैठ गया। मेरा विचार था कि वह सो गया है। मैंने भी यह समझा कि परिचय घनिष्ठ हो गया है, शेष पूना चलकर हो जायेगा, आराम करने लगा। मुझको इसमें झपकी आ गई। पंखे चल रहे थे, ठंडी हवा लगी तो नींद आ गई।

"मेरी नींद शिवपुरी रोड स्टेशन पर, गाड़ी खड़ी होने पर खुली और जब मैंने आँख खोलकर देखा तो वह लड़का अपनी सीट पर नहीं था। मैंने पहले अपना सारा डिब्बा देखा और उसके पश्चात् सारी गाड़ी का एक-एक डिब्बा छान मारा, किन्तु उसका कहीं पता नहीं चला। मार्ग में गाड़ी कहीं खड़ी नहीं होती थी। वह किस प्रकार उतरा और कहाँ गया, इसका कुछ पता नहीं चल सका।

"मैं पूना तक उसी गाड़ी में गया। सब उतरने वाले यात्रियों को एक बार पुनः देखा, किन्तु उसका कहीं पता नहीं चला। निराश मैं लौट आया हूँ।"

सेठ जी ने कहा, "तुम महामूर्ख हो। गार्ड से पूछना था गाड़ी कहीं बेकायदा तो नहीं रुकी थी। जिस स्टेशन पर खड़ी हुई थी, वहीं जाकर पता करना चाहिये था।"

माधवराव अपनी भूल पर लज्जित हाथ जोड़े खड़ा रहा। सेठ जी ने कुछ विचारकर कहा, 'जाओ, आज फिर पूना चले जाओ और उसको ढूँढने का यत्न करो। वह पुनः किसी दूसरी गाड़ी से पूना चला गया होगा। वहाँ दो तीन दिन ढूँढने का यत्न करो।

"देखो, अब उसके पास रुपये हैं। वह पटरी पर नहीं सोयेगा। तुमने उसको डरा दिया है। वह किसी धर्मशाला अथवा किसी होटल में ठहरेगा और दुकान-दुकान पर काम ढूँढता फिरेगा।"

इस प्रकार माधव को पुनः पूना भेज, सेठ अपने काम में लग गया। रात को जब सेठ ने भावना को माधव की घटना सुनाई तो उसका मुख

उतर गया।

उस रात सेठ यादवदेव की अपनी पत्नी से खुलकर बातचीत हुई। सोने से पूर्व भावना की माँ ने कह दिया, "भावना के सामने सुन्दर की बात बार-बार करने से उसके मन को दुःखी करने से क्या लाभ है? वह अच्छा था अथवा बुरा, अब इस बात से कुछ मिलने वाला नहीं है। इसको भूल जाने दीजिये। अन्यथा भय है कि कहीं जीवनभर के लिये वह उसके मोहजाल में फँसी न रह जाये।"

"मैंने कल उसको कहा था कि उसकी सूचना देता रहूँगा। अब मेरा विचार है कि उसको ढूँढ निकालना अति कठिन है। इस पर भी उसके विचार से, भावना पढ़ने-लिखने में मन लगा सकेगी तो लाभ ही होगा।"

"पर मैं चाहती हूँ कि हमको अब उसकी सगाई कर देनी चाहिये और अगले वर्ष उसका विवाह हो जाना चाहिये।"

"वह अभी बहुत छोटी है। बीस वर्ष की आयु से पूर्व उसका विवाह नहीं होना चाहिये।"

"यदि सुन्दर यहाँ होता, तब तो शीघ्र ही उसका विवाह हो जाता कि नहीं?"

"यह तुमको किसने कहा है? देखो राधा! भावना का विवाह मणिलाल से अथवा रत्नलाल के साले से नहीं होगा।"

"मैं यह नहीं कह रही हूँ। मैं तो यह विचार कर रही हूँ कि हमें अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी ढूँढना है। यदि मरने से पहले भावना के घर कोई लड़का हो जाय तो हमारी यह समस्या सुलझ जावेगी।"

"कौन-सी समस्या है तुम्हारे सम्मुख?"

"वही उत्तराधिकारी पाने की।"

"वह तो मैं सुलझा चुका हूँ। मैं अपनी मिल अपने जीवन-काल में ही बेच दूँगा और सब धन का एक ट्रस्ट बना जाऊँगा।"

"किस बात का ट्रस्ट बनाओगे?"

"यह विचार कर रहा हूँ। मैं किसी ऐसे काम के लिये ट्रस्ट बनाना नहीं चाहता जिस पर सरकार का किसी प्रकार का भी अधिकार हो सके।"

"आप अपने गाँव में एक बहुत सुन्दर लक्ष्मीनारायण का मन्दिर बनवा दीजिए।"

सेठ हँस पड़ा। वह बोला, "आज की सरकार तो मन्दिरों में भी हस्तक्षेप करने लगी है। उनके ट्रस्ट भंग कर उनके लिए कानून बनाने लगी है।"

"यह तो घोर अन्याय हो रहा है।"

"देवी जी ! यह कलयुग है। श्रीभागवत में तो महर्षि पहले ही लिख गए हैं कि कलयुग के राजा व्यापार करने लगेंगे। सो वह अब होने लगा है। व्यापार के लोभी राजा, जहाँ कहीं भी धन दिखाई देता है, उसे अपने अधीन करने का यत्न करते हैं। मन्दिरों में भक्त-जनों का श्रद्धा-भक्ति से लगाया धन, पुजारी जहाँ अपने सुख-भोग के लिये प्रयोग करने लगे हैं, वहाँ सरकार राज्य-कर्मचारियों के उदरस्थ करने लगी है।"

"तो क्या करेंगे ?"

"बताया तो है कि अभी कुछ समझ में नहीं आ रहा है। यह धन मैंने अपने परिश्रम से कमाया है। दिन में पन्द्रह-सोलह घण्टे काम कर, मितव्ययिता से जीवन-यापन कर और बुद्धि का प्रयोग कर पाँच-सौ रुपयों की पूँजी से यह कपड़ा-मिल बनाई है। अब देशभर में अपने कपड़े की दुकानें खोल ली हैं। रुपया आने लगा तो सरकार ने टैक्स बढ़ा दिया। वह देकर भी मैंने उन्नति की है। इस पर सरकार ने मज़दूरों के विषय में ऐसे कानून बना दिये, जो मिल के प्रबन्धकों को व्यर्थ के झगड़े में डालने वाले हैं। इनको भी मैं मानता हूँ। भगवान् की कृपा है कि इस पर भी मेरी आय दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। मेरे मिल में कर्मचारियों को सब कारखानों से अधिक वेतन मिलता है, इस पर

भी कर्मचारी हड़ताल करते हैं। व्यर्थ के झगड़े करते हैं और जहां इनके पक्ष में कोई उल्टी-सीधी युक्ति मिल जाय तो अधिकारी हमारे सिर पर कूदने लगते हैं।

"इस पर भी मुझको लाभ ही रहता है। अब राज्य समाजवाद का बहाना बनाकर कारखानों का मालिक स्वयं बनना चाहता है।

'इसी कारण मैं कोई ऐसा उपाय विचार कर रहा हूँ जिससे राज्य के सब नियमों का पालन करते हुए, जो कुछ भी मेरे पास बच जाता है, उसको मैं अपनी इच्छा से प्रयोग कर सकूँ।"

"यह सब बेकार है जी ! हमारे मरने तक कुछ बचेगा अथवा नहीं, कौन कह सकता है ? आप एक बात कीजिए। अपने धन को दान-दक्षिणा में दे दीजिए। कुछ मुझको दे दीजिए, कुछ भावना को। इसी प्रकार कुछ मणिलाल के नाम और कुछ रत्नलाल के नाम कर दीजिए।"

इससे सेठ जी आवेश में आकर कहने लगे, "इन सम्बन्धियों को देना तो सरकार के हाथ में देने से भी अधिक पापमय होगा। सरकार को मैं क्यों नहीं देना चाहता, तुमको बताया है कि मेरा धन सरकार मेरी इच्छानुसार व्यय नहीं करेगी। परन्तु क्या ये रत्नलाल इत्यादि मेरी इच्छानुसार ही व्यय करेंगे ? सरकार तो फिर भी किसी के लाभ में व्यय करेगी परन्तु ये तो वेश्यागमन, जूआ तथा शराब-पार्टियों में ही सब कुछ स्वाहा कर देंगे।

"नहीं, मैं इनको अपना कमाया हुआ धन कभी नहीं दूंगा।"

तृतीय परिच्छेद

[१]

सुन्दर जब घोड़ागाड़ी में सवार हो विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन की ओर चला तो उसने देखा कि एक व्यक्ति, मजदूरों के-से कपड़े पहने हुए, थाने के समीप दीवार से ढासना लगाये खड़ा है। जब उसने उसको घोड़ागाड़ी में सवार होते देखा तो वह भी एक अन्य गाड़ी को संकेत से बुला सवार हो गया। इससे सुन्दर को संदेह हो गया कि उस व्यक्ति को पता चल गया है कि उसके पास नोटों का बण्डल है। कदाचित् उससे रुपये छीनने की लालसा से, वह उसके पीछे-पीछे आ रहा है।

कुछ दूर जाकर सुन्दर ने घूमकर देखा। उसको अपनी घोड़ागाड़ी के पीछे एक अन्य घोड़ागाड़ी आती दिखाई दी। उसका सन्देह विश्वास में बदल गया। उसने रुपयों को सुरक्षित करने का विचार किया।

उसकी समझ में यही आया कि नोटों को गिन डालना चाहिए और सब को रूमाल मे बाँधकर कुर्ती के अन्दर की जेब में रख लेना चाहिए। बाहर दस-बीस रुपये ही रखने ठीक होंगे।

अतः वह स्टेशन पर पहुँच पेशाबघर में चला गया। वहाँ नोटों के बण्डल में से चार पाँच-पाँच रुपये के नोट निकालकर बाहर की जेब में रख लिए। शेष को रूमाल में बाँध, भीतर की जेब में रख, बाहर चला आया। टिकटघर के पास पहुँच, उसी आदमी को, जिसको उसने थाने के बाहर खड़े देखा था, वहाँ खड़ा देख, वह सतर्क हो गया। जब वह टिकट लेने लगा तो वह व्यक्ति भी टिकट लेने आ खड़ा हुआ। सुन्दर ने पूना का टिकट लिया तो उसने भी पूना का टिकट ले लिया।

इससे सुन्दर के मन मे विश्वास पक्का जम गया कि वह कोई जेब-कतरा अथवा ठग है। उसने उसी समय अपने मन में निश्चय कर लिया कि उसको धोखा दे, उससे अलग हो जावेगा।

रेलगाड़ी में तो उस व्यक्ति ने अपना नाम बताया, सुन्दर का नाम पूछा और काम-काज पूना जाने का कारण इत्यादि विषयों पर बात कर, अपने घर ले चलने का प्रस्ताव कर दिया। पश्चात सुन्दर को नौकरी दिलाने का भी प्रलोभन उसने दिया।

इस पर सुन्दर उसको चकमा देने का विचार करने लगा। जब वह बातें करता हुआ चुप हुआ तो सुन्दर ने सीट की पीठ के साथ ढासना लगा, आँखें मूंद, सोने का बहाना किया। उसने देखा कि कुछ समय के पश्चात् उसके साथ चलने वाला व्यक्ति वास्तव में ही सो गया है।

गाड़ी शिवपुरी रोड स्टेशन पर ठहरती नहीं थी। आज किसी कारणवश ठहरी तो सुन्दर चुपचाप उठा और गाड़ी से नीचे उतर गया। उसने निश्चय कर लिया था कि वह अगली ट्रेन से पूना जावेगा।

अगली ट्रेन पेसेंजर गाड़ी थी। वह उसमें सवार हो रात के दस बजे पूना पहुँचा। उसका मन कहता था कि माधवराव उसकी इस गाड़ी से प्रतीक्षा करेगा। किन्तु वह माधवराव के घर जाकर ठहरना तो दूर,

उसको अपना ठहरने का स्थान भी बताना नहीं चाहता था। इस कारण जब गाड़ी प्लैटफॉर्म पर पहुँची तो वह गाड़ी में छुपकर प्लैटफॉर्म पर देखने लगा। उसका अनुमान ठीक ही निकला। माधवराव प्लैटफॉर्म पर खड़ा तन्मयता से गाड़ी की सवारियों में किसी को खोज रहा था। सुन्दर छिप कर खड़ा रहा। उसका डिब्बा आगे निकल गया और माधवराव पीछे रह गया। जब गाड़ी खड़ी हुई तो माधवराव लपककर स्टेशन से बाहर निकलने के द्वार पर जा खड़ा हो गया। सुन्दर अपने डिब्बे में से ही उसकी गतिविधि देख रहा था। जब माधव फाटक के समीप खड़ा यात्रियों को निकलता देख रहा था, सुन्दर गाड़ी के पिछली ओर से निकल, दूसरी लाइन पर खड़ी एक अन्य गाड़ी में घुस गया। उस को लाँघकर वह दूसरे प्लैटफॉर्म पर पहुँच गया। वहाँ वह एक बैंच पर बैठ, अपनी गाड़ी की सवारियों को बाहर जाता देखता रहा।

जब सब लोग चले गये तो वह पुनः अपनी गाड़ी में आ गया। वहाँ से उसने प्लैटफॉर्म की ओर देखा। उसने देखा कि माधवराव निराश-सा धीरे-धीरे प्लैटफॉर्म से बाहर की ओर जा रहा है। अब सुन्दर प्लैटफॉर्म पर निकल आया और टहलता हुआ एक टी-स्टाल पर जा खड़ा हो गया। वहाँ पर एक प्याला चाय पीकर वह स्टेशन से बाहर आया। तब तक माधवराव जा चुका था।

उसने एक साइकलरिक्शा वाले से पूछा, "यहाँ कोई धर्मशाला है।"

"हाँ साहब ! चलिये, ले चलता हूँ।"

सुन्दर उस रिक्शे में बैठ गया। वह उसको घुमा-फिराकर एक धर्मशाला में ले गया। वहाँ आठ आने रोज़ पर उसको एक कमरा और एक चारपाई मिल गई। रिक्शा वाले को आठ आने देकर सुन्दर ने विदा कर दिया।

अगले दिन से सुन्दर ने नौकरी ढूँढनी आरम्भ कर दी। अपने लिये कपड़े बनवाये और एक क्लर्क के योग्य पहरावा पहिन, दुकान-

दुकान पर जाकर नौकरी ढूँढने लगा।

प्रायः उसे यही उत्तर मिलता था—"यहाँ कोई स्थान नहीं है।" कहीं-कहीं कोई परिचय माँग लेता। एकाध स्थान पर यह भी पूछा गया कि वह पढ़ा-लिखा कितना है?

इस प्रश्न के उत्तर में वह कहता, "मैं अंग्रेज़ी अच्छी तरह लिख-पढ़ सकता हूँ। हिन्दी और गुजराती भी जानता हूँ। हिसाब-किताब भी कर सकता हूँ।"

इस पर फिर प्रश्न होता, "कौन-सी परीक्षा उत्तीर्ण की है?"

सुन्दर कहता—"मैं घर पर ही पढ़ा हूँ।"

"हमारे यहाँ नौकरी नहीं है।"

"आप एक बार परीक्षा लेकर तो देख लीजिये। मैं समझता हूँ कि मेरी योग्यता किसी ग्रैजुएट से कम नहीं है।"

"गुजराती हो?"

"जी नहीं। उत्तरप्रदेश के कुमायूँ डिवीज़न का रहने वाला हूँ।"

"गुजराती कैसे जानते हो?"

"एक गुजराती सेठ के यहाँ नौकरी की थी। वहीं पर सीखी थी।"

"मराठी जानते हो?"

"नहीं, किन्तु शीघ्र ही सीख लूँगा।"

"नहीं, इसके बिना हमारा कार्य नहीं चलेगा। तुम कोई और स्थान देख लो।"

इस प्रकार नौकरी ढूँढते हुए तीन मास व्यतीत हो गये। इस अवधि में वह लगभग डेढ़ सौ रुपया व्यय कर चुका था। सेठ यादवदेव ने उसके पाँच वर्ष के कार्यकाल का वेतन, सब गिनगिनाकर तथा पुस्तकों आदि के लिये उसने जो कुछ लिया था, वह काटकर, कुल नौ सौ बीस रुपये उसके लिये भिजवाये थे। इससे वह सर्वथा निरुत्साहित तो नहीं हुआ, हाँ, दिनभर नौकरी की खोज में घूमने से वह जीवन को तिल-तिलकर व्यर्थ जाता देख घबरा रहा था। वह समझता था कि

यदि चालीस पचास रुपये महीने भी मिल जायें तो वह जीवन में स्थिर हो, अपनी उन्नति का उपाय सोच सकता है।

इसी प्रकार विचार करते-करते उसकी समझ में आया कि दिमागी काम की नौकरी तो मिलेगी नहीं। इसलिए अब शारीरिक परिश्रम का काम ढूँढना चाहिये। उसके मन में विचार आया कि यदि साइकल-रिक्शा चला ले तो कैसा रहे ? इस विषय में वह गम्भीरतापूर्वक सोचने लगा।

साइकिलरिक्शा बिना लायसेंस के नहीं चल सकती। लायसेंस बिना सिफारिश और रिश्वत के नहीं मिल सकता। नगर में बहुत-से धनी लोगों ने साइकिलरिक्शा के लायसेंस ले रखे हैं और चलाने वाले नित्य रिक्शा ठेके पर ले जाते हैं, दिनभर चलाते हैं और रात को रिक्शा लौटाकर ठेके का रुपया दे, शेष धन से अपना निर्वाह करते हैं।

अगले दिन एक रिक्शा के ठेकेदार के पास जाकर दो रुपये नित्य किराये पर उसने रिक्शा ले ली। ठेकेदार ने वाकफियत माँगी, परन्तु सुन्दर की सूरत-शक्ल देख, बिना वाकफियत और ज़मानत के रिक्शा देने के लिये वह तैयार हो गया। केवल उसके ठहरने का पता लिख लिया।

सुन्दर प्रातः सात बजे रिक्शा लेकर निकला और मध्याह्न तक उसने पाँच रुपये बना लिए। वह उसी रिक्शा में अपने खाने के स्थान पर गया और वहाँ दूध, रोटी, साग-भाजी खाकर रिक्शा ठेकेदार को वापस करने जा पहुँचा।

उसने रिक्शा वापस दी। दो रुपये साथ दिए और सराय की ओर चल पड़ा। ठेकेदार ने उसे पीछे से आवाज़ दी। सुन्दर लौट आया और ठेकेदार के सम्मुख खड़ा हो गया। ठेकेदार ने पूछा, "तुम सराय में रहते हो ?"

"जी।"

"वहाँ क्या किराया देते हो ?"

'प्रतिदिन का आठ आना।'

'फिर सायंकाल रिक्शा नहीं चलाओगे क्या ?"

"जी नहीं।"

"कितना पैदा कर लिया है आज ?"

"आपका किराया देकर तीन रुपये पाँच आने मेरे पास बचे हैं। मैं दिन का भोजन भी कर चुका हूँ।"

'कोई बाल-बच्चा नहीं है ?"

सुन्दर हँस पड़ा और बोला, "जी, अभी विवाह नहीं हुआ। माता-पिता हैं नहीं। अकेला ही हूँ।"

ठेकेदार विस्मय कर रहा था। जब सुन्दर जाने लगा तो उसने कहा 'अब शेष समय में क्या करोगे ?"

"एक अन्य कार्य है, वह करूँगा।"

"क्या काम है, हम भी तो जानें ?"

"मैं कुछ पढ़ता-लिखता भी हूँ।"

"क्या पढ़ते हो ?"

सुन्दर ने ठेकेदार को टालने के लिए कह दिया, 'हेगल की फिलॉसौफी।"

ठेकेदार समझा नहीं। वह इतना ही समझा कि यह कोई कम्युनिस्ट है। वही लोग इस प्रकार के कठिन शब्द बोला करते हैं। उसने कुछ विचारकर कहा, "कहीं मकान ले लो तो ठीक रहेगा। धर्मशाला में तो किराया अधिक देना होता है, इस पर भी वहाँ आराम कम मिलता है।"

"आप ही कोई मकान बता दीजिए न ?"

'मेरा ही एक मकान है। भाड़ा तो पन्द्रह रुपये होगा परन्तु कमरे दो होंगे। टट्टी होगी। गुसलखाने के लिए तो बाहर अहाते में ही नल लगा है।"

"मकान दिखा दीजिए।"

अब सुन्दर समझ रहा था कि वह चार-पाँच रुपये नित्य कमा लिया करेगा। दिन का कुछ भाग वह अपनी ज्ञान-वृद्धि में लगाया करेगा। एक अभिलाषा उसके मन में थी कि वह भी पुस्तकें लिख सके, छपवा सके और अपने मन में उठ रहे विचारों को अन्य व्यक्तियों तक पहुँचा सके।

परन्तु वह विचार करता था कि वह अभी सत्रह वर्ष की आयु का है। उसको पुस्तकों का तो कुछ ज्ञान है, किन्तु अनुभव बहुत कम है। इस पर भी वह विचार करता था कि उसके जीवन का यही उद्देश्य है और इसकी प्राप्ति के लिए उसको तैयारी करनी चाहिए।

आज वह विचार करने लगा कि अब वह क्या पढ़ेगा और किस प्रकार भविष्य में अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकेगा।

एक सप्ताह में ही उसने ठेकेदार का मकान भाड़े पर ले लिया। अपने पढ़ने के लिये वह एक अंग्रेज़ी का शब्द-कोष ले आया और इतिहास की पुस्तक लाकर स्वाध्याय करने लगा। उसका यह स्वभाव भावना को पढ़ते देखकर बना था। वह अपने पढ़े हुए विषय को पुनः संक्षेप में लिख लिया करता था और उस पर अपने पूर्वज्ञान से, टिप्पणियाँ लिखता रहता था।

इस प्रकार उसकी जीवन-नौका आराम से चलने लगी। उसने डाकखाने में अपना सेविंग का खाता खोल लिया। सप्ताह पश्चात् जो कुछ बचता था, वह उसमें जमा करा दिया करता था।

[२]

इस प्रकार कार्य करते हुए दो वर्ष व्यतीत हो गए। इस समय तक उसका 'बैंक बेलेंस' दो सहस्र रुपये तक हो गया था और एक सहस्र रुपये की उसने पुस्तकें खरीदकर पढ़ ली थीं। रिक्शा उसकी अपनी हो गई थी।

इस काल में एक बात और हुई थी। साइकलरिक्शाचालक यूनियन का वह सदस्य बन गया था। वह सदा ही यूनियन की मीटिंग्स में नियमित रूप से जाने लगा था। यूनियन का मंत्री कृष्णराव नामक एक महाराष्ट्रियन ब्राह्मण युवक था। वह पढ़ा-लिखा और मार्क्सवाद का ज्ञाता था। यूनियन की मीटिंग्स में वह रिक्शाचालकों को अपने ज्ञान का प्रसाद दिया करता था।

सुन्दर चुपचाप बिना अपनी सम्मति दिये मीटिंग में बैठा रहता था। यूनियन का झगड़ा प्रायः ठेकेदारों से होता रहता था। उनके विरुद्ध वे नगरपालिका के अधिकारियों से मिलकर, उनके लायसैंस जब्त कराने अथवा उनके रिक्शा ठीक रखने और सीधे चालकों को लायसैंस देने के विषय में कहते रहते थे। अपने इन प्रयत्नों में यूनियन के अधिकारी कुछ सीमा तक सफल भी हो जाते थे। इस पर भी कृष्णराव वायलिन के तार की भाँति यूनियन को सदा तनाव की स्थिति में रखने में प्रयत्नशील रहता था।

सुन्दर ने यूनियन के प्रस्तावों का कभी विरोध नहीं किया था। इससे कृष्णराव उसको एक मूर्ख, सरलचित्त सदस्य के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं समझता था।

एक दिन यूनियन में यह समाचार आया कि नगरभर में रिक्शा के ठेकेदारों ने भी अपनी यूनियन बना ली है। उसका नाम उन्होंने 'रिक्शा ओनर्ज़ यूनियन' रखा है। इससे वे रिक्शाचालकों की यूनियन की माँगों का विरोध करने का विचार करते थे।

कृष्णराव इसको एक भयंकर चाल समझता था। उसने यूनियन में प्रस्ताव उपस्थित किया कि अधिकारियों से मिलकर, उनको इसकी भयंकरता का परिचय कराया जाय और इस प्रकार इस यूनियन को अवैधानिक घोषित करा दिया जाय।

सुन्दर आज कृष्णराव की युक्तियों को सुनकर मुस्करा रहा था। प्रस्ताव उपस्थित हुआ और स्वीकार कर लिया गया। सुन्दर ने सदा

की भाँति आज भी इस प्रस्ताव का कोई विरोध नहीं किया। परन्तु कृष्णराव चाहता था कि सब लोग हाथ खड़ाकर प्रस्ताव का समर्थन करें। उसने कहा, "यह विषय अत्यावश्यक है। यह हमारे जीवन-मरण के संघर्ष का श्रीगणेश है। हम इस बात को सहन नहीं कर सकेंगे कि खून चूसनेवाले भी संगठित हो जायँ। इस कारण आरम्भ में ही इसका समूल नाश करने के लिए हमको अपना सर्वस्व निछावर करने के लिये प्रण करना है। अतः मैं चाहता हूँ कि सब सदस्य हाथ खड़ाकर इस प्रस्ताव का समर्थन करें।"

सुन्दर अभी भी मुस्करा रहा था। सबने हाथ खड़े किए, परन्तु सुन्दर तब भी चुपचाप बैठा रहा। कृष्णराव यह देख रहा था। इससे उसके माथे पर त्यौरी चढ़ गई। उसने कहा, "एक सदस्य है, जो हमारे इस संघर्ष से पृथक् रहना चाहता है।"

"आपका अनुमान ठीक है।" सुन्दर ने उसके उत्तर में कह दिया।

"क्यों ?"

"मैं इस विषय में किसी प्रकार की भी युक्ति करना नहीं चाहता।"

"अर्थात् तुम मूर्ख हो, अपने हित-अहित का भी तुम्हें कोई ज्ञान नहीं है।"

"मुझे सब ज्ञान है और जानता हूँ कि मेरा हित और अहित किसमें है।"

"हम भी सुनना चाहते हैं।"

"तो सुनो।" सुन्दर ने खड़े होकर कहा, "मैं नहीं चाहता था कि कोई ऐसी बात कहूँ, जिससे आप लोगों के मन में अपने संगठन के प्रति संदेह उत्पन्न होने लगे।

"मैं अपना और अपने सहयोगियों का यह अधिकार समझता हूँ कि हम अपने हितों की रक्षा के लिए यूनियन बनायें, अधिकारियों से मिलें, उनको अपने हितों की प्रेरणा देने के लिए वकील करें। साथ ही ये सब अधिकार मैं दूसरों को भी देना चाहता हूँ। उनको भी अधिकार होना

चाहिए कि वे अपनी यूनियन बनायें, वकील करें, अधिकारियों से मिलें और न्यायसंगत यत्न द्वारा अपने हितों की रक्षा करें।"

"इससे तो अनर्थ होने की सम्भावना है।" कृष्णराव ने कहा।

"इससे हमारा उतना ही अनर्थ हो सकता है, जितना हमारे संगठन से उनका।"

"हम क्या अनर्थ कर सकते हैं?"

"यदि मैं कृष्णराव जी के कथन को दोहराऊँ तो हम माँग कर सकते हैं कि जो चालक जिस रिक्शा को चलाता है, वह रिक्शा उसकी ही हो जाय। यदि कृष्णराव जी की यह माँग स्वीकार कर ली जाय तो इससे तो अनर्थ हो जावेगा?"

"परन्तु हमारी इस माँग को स्वीकार नहीं किया जावेगा, क्योंकि यह नैसर्गिक न्याय के विपरीत है। यह भारत के विधान के भी विपरीत है।"

"इसी प्रकार जब रिक्शा-मालिकों की यूनियन कोई न्याय और विधान के विरुद्ध माँग करेगी तो वह मानी नहीं जावेगी।

'अर्थात् संगठन बनाने से न हम अनर्थ कर सकते हैं और न ही कोई दूसरा कर सकेगा। किसी को भी संगठित होने का हमारे संविधान में अधिकार है। इस कारण मैं इसका विरोध नहीं कर सकता।"

"तो आप चोर और ठगों को भी अपना संगठन बनाने का अधिकार देते हैं?"

"जब वे चोरी करेंगे तो कानून भंग करेंगे। अथवा जब चोरी करने के लिये वे सगठित होंगे तो कानून इसमें हस्तक्षेप करेगा। उससे पहले नहीं। रिक्शा का मालिक होना कोई चोरी नहीं है। अपनी वस्तु को किराये पर देना भी कोई चोरी अथवा ठगी नहीं है। इस कारण ऐसा कार्य करने वालों का संगठन भी चोर अथवा ठगों का संगठन नहीं कहा जा सकता।"

दो वर्ष से चुप रहने वाला, बुद्धुओं की भाँति यूनियन की कार्यवाही

को सुनने वाला तथा मूर्ख लगने वाला सुन्दर जब बोला तो कृष्णराव निरुत्तर हो गया। उसने अपनी अन्तिम चाल चली और कहा, "रूस में ऐसे संगठन की स्वीकृति नहीं है।"

"मैं रूसी शासन का सदस्य नहीं। वे जो कुछ करते हैं, वह भी मुझे पसन्द है यह कैसे जान लिया? मैं तो मानव को स्वतन्त्रता तथा स्वेच्छा से विचरण करने वाला प्राणी मानता हूँ। उसकी स्वतन्त्रता पर मैं केवल एक प्रतिबन्ध चाहता हूँ। वह यह कि वह किसी की स्वतन्त्रता का विरोध न करे।"

इस पर कृष्णराव ने कह दिया, "इससे तो घोर अनर्थ मच जावेगा। संसार में इतनी छीना-झपटी होगी कि नर-रक्त की नदियाँ बहने लगेंगी।"

इस पर सुन्दर ने कहा, "इन सरलचित्त, कम पढ़े-लिखे, मज़दूरी कर पेट भरने वाले बेचारों को धोखा मत दो, कृष्णराव! मैं पूछता हूँ बताओ ऐसा कौन सा काम है, जो अनर्थकारी हो, परन्तु किसी दूसरे की स्वतन्त्रता हनन न करता हो। बताओ मैं तुमको चैलेंज करता हूँ। है कोई ऐसा काम?"

कृष्णराव विचार करने लगा। उसको चुप देख यूनियन के अन्य सदस्य बितर-बितर उसका मुख देखने लगे। इस पर सुन्दर ने अपनी बात कह दी—"रिक्शा ओनर्ज़ का अपनी यूनियन बनाना किसी भी दूसरे की, किसी भी प्रकार से स्वतन्त्रता नहीं छीनता। इस कारण उसके बनने में मुझको कोई आपत्ति नहीं है।

"जब यूनियन किसी प्रकार की भी ऐसी बात करेगी, जो हमारी अथवा किसी अन्य की स्वतन्त्रता छीनना चाहेगी तो मैं आपको कहूँगा कि उनकी उस बात का विरोध किया जाय।"

इस पर कृष्णराव बोला, "बात यह है कि हमारी सरकार सरमाया-दारों की सरकार है। इससे हम नहीं चाहते कि सरमायादारों की यूनियन बने, जिससे सरकार को हम पर अन्याय करने का बहाना मिल जावे।"

"फिर वही धोखा-धड़ी की बात। भारत में सरमायादारों की सरकार नहीं है। यह भारत के रहने वालों की सरकार है। प्रत्येक इक्कीस वर्ष से बड़ी आयु वाले को सरकार बनाने में राय देने का पूरा अधिकार है। इस कारण जो भी सरकार बनती है, वह भारत में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य की सरकार है। यदि यहाँ कम्युनिस्ट सरकार नहीं तो वह इसलिए कि जनसाधारण कम्युनिस्ट नहीं। पहले उनमें प्रचार करो।"

कृष्णराव समझ गया कि सुन्दर को जैसा वह समझता था, वैसा नहीं है। इस कारण उसने नीति से काम लेने की सोची और बोला, "अच्छा छोड़ो इस बहस को। क्या मैं यह समझूँ कि यह प्रस्ताव निर्विरोध स्वीकार हो गया है?"

इस पर एक चालक कहने लगा, "नहीं साहब! अब हमको सुन्दर बाबू से कुछ और पूछना है। हम उनकी स्पष्ट सम्मति चाहते हैं कि वे क्यों इस प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हैं?"

कृष्णराव नहीं चाहता था कि सुन्दर को कुछ और अधिक कहने का अवसर दिया जाय। अतः उसने कहा "सुन्दर बाबू को जो कुछ कहना था, वे कह चुके हैं।"

इस पर एक अन्य चालक कहने लगा, "हम सुन्दर बाबू से पूछते हैं कि क्या वे और कुछ नहीं कहना चाहते?"

विवश कृष्णराव ने सुन्दर की ओर देखा तो सुन्दर पुनः उठकर कहने लगा, "साथियो! मैं यह समझता हूँ कि रिक्शा के मालिकों की यूनियन बनने से हमको कुछ भी हानि नहीं होगी। हाँ, यदि हम कुछ बुद्धि से काम लें तो इससे लाभ हो सकता है। कितने ही रिक्शा चलाने वाले रिक्शा के मालिक भी हैं। वे सब उसकी यूनियन के भी सदस्य बन सकते हैं। मैं स्वयं ऐसा ही करने जा रहा हूँ। मेरे साथ आप में से वे व्यक्ति, जो मालिक और चालक दोनों हैं, उस यूनियन के सदस्य बन जावें। इस स्थिति में हम उनको किसी प्रकार का भी अन्याय करने से, सरलता के साथ रोक सकेंगे।

"साथियो ! मैं मालिक और नौकर में कोई ऐसी रेखा नहीं मानता जो पार न की जा सके। अनेकों नौकर मालिक हो गये हैं। इस कारण हम भी मालिक हो सकते हैं। उनके विरुद्ध अकारण घृणा करना, अपनी उन्नति की निन्दा करना है।"

इसके पश्चात् कृष्णराव को अपना प्रस्ताव स्वीकार कराना कठिन हो गया और सभा विसर्जित हो गई।

[३]

यूनियन की मीटिंग के पश्चात् कृष्णराव सुन्दर के साथ-साथ चलता हुआ पूछने लगा, "बाबू ! तुममें तो बोलने की अनुपम योग्यता है। कभी-कभी हमारी मीटिंगों में चलकर भी भाषण दे दिया करो।"

"कौन-सी मीटिंग ?"

"हमारी पार्टी की।"

"कौन-सी पार्टी है तुम्हारी ?"

"कम्युनिस्ट पार्टी।

"मुझको मूर्ख बना रहे हो कृष्णराव ?"

"क्यों, मूर्ख बनाने वाली ऐसी कौन-सी बात कही है मैंने ?"

"मैंने कम्युनिज्म का सिद्धान्त और इतिहास पढ़ा है। इससे मैं कहता हूँ कि विद्वान् आदमी वह होता है, जो दूसरे के होंठ फड़कते देख समझ जाय कि वह क्या कहना चाहता है। एक मूर्खता तो तुमने मीटिंग में ही की है। मुझको चुप देख तुम्हें पहले ही समझ जाना चाहिए था कि मैं यूनियन के अन्य सदस्यों की भाँति अनपढ़ नहीं हूँ, जो तुम्हारे अर्थहीन नारों के पीछे मरने के लिए तैयार हो जाता। तुमने जब हाथ उठवाए तो भी तुमको समझ जाना चाहिए था कि मैं प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हूँ। तुमने मुझे विवश किया कि मैं विरोध का कारण बताऊँ। जब मैंने बताया तो तुम मेरी बात का उत्तर नहीं दे सके।

"यह जानते हुए भी कि मैं मालिक और नौकर की दो श्रेणियाँ नहीं मानता, किसी मालिक का अन्यायाचरण उतना ही सम्भव समझता हूँ, जितना किसी नौकर का अन्याय करना। मालिकों अथवा नौकरों के अन्यायाचरण को रोकने का ढंग वह नहीं जो कम्युनिस्टों के गुरु कार्लमार्क्स ने बताया है। उसका उपाय है एक सुदृढ़, न्यायनिष्ठ, निष्पक्ष, परमात्मा के न्याय से डराने वाली सरकार का निर्माण करना। ऐसी सरकार बनाने के लिए मनुष्य को विचार और कार्य में पूर्ण स्वतन्त्रता देनी आवश्यक है। तभी एक व्यक्ति अथवा श्रेणी का अन्याय रोका जा सकता है।"

"मुन्दर ! तुम रिक्शा क्यों चलाते हो ?" तुम तो इतने योग्य हो कि किसी भी कारखानेदार से एक सहस्र रुपये महीना वेतन पा जाओगे। तुम उनकी वकालत बहुत ही योग्यता से कर सकते हो।"

"और कृष्णराव ! तुम बहुत ही भोले हो। मैं स्वतन्त्र रहना चाहता हूँ। इसी कारण मैं किसी की नौकरी करना नहीं चाहता। मैं किसी की वकालत करता हूँ तो इसलिए नहीं कि मैं किसी का नौकर हूँ अथवा किसी का नौकर बनना चाहता हूँ।

'मैं वर्तमान युग में सरमायदारों को भी उतना ही पापी मानता हूँ, जितना मजदूर 'मजदूर' का नाद करने वाले मजदूर नेताओं को। दोनों एक ही भूमि की उपज हैं।

"दोनों परमात्मा के वास्तविक रूप को न मानने वाले हैं। दोनों नास्तिक हैं। अतः दोनों को ही अधर्माचरण भाता है।"

सुन्दर अपने घर की ओर जा रहा था। कृष्णराव इस रहस्यमय युवक के रहस्य को जानने के लोभ में साथ-साथ चल रहा था। जब सुन्दर ने परमात्मा को अपनी युक्ति में ला बिठाया तो कृष्णराव खिल-खिलाकर हँस पड़ा। उसने कह दिया, "यह रिक्शा चलाने में आस्तिक अथवा नास्तिकवाद कहाँ से आ गया ? जब मन्दिर में जाया करो तो अपने पूरे ज़ोर से उस बहरे को पुकार लिया करो। किन्तु यहाँ हमारे

सम्मुख तो कम-से-कम इन्सानों की-सी बात करो ।"

"कृष्णराव ! मन्दिर तो मैं कभी गया ही नहीं । वहाँ जाने की मुझे कभी आवश्यकता ही अनुभव नहीं हुई । इस पर भी मैं यह मानता हूँ कि इस ब्रह्माण्ड में कोई एक ऐसी शक्ति है, जो सबको देखती है और सबके साथ न्याय होने में कारण है । इस कारण मैं, एक मज़दूर होता हुआ भी, अपनी न्याय-बुद्धि को नहीं छोड़ता । मैं जब भी कोई कार्य ऐसा करने लगता हूँ, जो किसी दूसरे को हानि पहुँचाने वाला अथवा किसी दूसरे की स्वतन्त्रता का हनन करने वाला हो, तो उस परमशक्तिवान की उपस्थिति को अनुभव कर, वैसा कार्य करने से रुक जाता हूँ ।

"यदि मालिक अन्याय करते हैं तो वह इस कारण करते हैं कि उनके मन में यह विश्वास होता है कि उनके कामो को देखने वाला कोई नहीं है । वे भले ही राम-नाम की माला फेरते हों, यदि उनके मन में परमात्मा के अस्तित्व पर विश्वास होता तो वे मज़दूरों के हक को कभी नहीं छीनते ।

"सरकार की पुलिस, फौज और कानून को धोखा दिया जा सकता है । परन्तु परमात्मा, जो सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान है, उनको धोखा देना कठिन है ।

"इसी प्रकार मज़दूर नेता भोले-भाले मजदूरों को झूठ बोलकर, अपने वाग्जाल में फँसाकर उनसे अन्याय कराते हैं तो वह इस कारण कि वे समझते हैं कि मनुष्य अल्पज्ञ है, उसको धोखा देकर वे अपनी नेतागिरी कायम रख सकते हैं । यदि उनके मन में परमात्मा पर विश्वास होता तो वे ऐसा करने से डरते और वैसा कुछ नहीं कर सकते, जैसा रूस के नेताओं ने हंगरी के लाखों भोले-भाले लोगों को मौत के घाट उतारकर किया है ।"

"क्या अपराधियों को दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए ?"

"वे अपराधी थे क्या ? किसके विरुद्ध अपराध किया था उन्होंने ?"

"हंगरी की नियमित सरकार को उलट दिया था उन्होंने।"

"किन्तु रूस की सरकार को तो नहीं उलटा था न? वह नियमित सरकार इसके नश को दण्ड नहीं देना चाहती थी। परन्तु रूसी सेना और हवाई जहाज़ों ने साठ हज़ार हंगरी के रहने वालों की हत्या कर डाली।"

"सुन्दर! तुम नहीं समझ सकते। इतनी दूर बैठे कैसे तुम जान सकते हो कि कौन दोषी था और कौन नहीं?"

"ठीक है, परन्तु तुम इतनी दूर बैठे वह सब कैसे जानते हो, जो मैं नहीं जान सकता?"

"वहाँ पर गए लोगों के वक्तव्य पढ़ने से पता चलता है।"

"मैं वहाँ के रूसी अत्याचार से बचकर तथा भागकर आए निर्वासितों के वक्तव्य पढ़कर कह रहा हूँ।"

"तो हम दोनों गलत हो सकते हैं।"

"ठीक है; इस बात को मानकर आज से चीन और रूस के उदाहरण मत दिया करो।"

"उन दोनों देशों ने बहुत उन्नति की है।"

"किस बात में?"

"विज्ञान में।"

"विज्ञान से क्या करोगे, जब मानवों में मानवता ही नहीं रही। वहाँ सब इतने भयभीत हैं कि अपने मन की बात भी नहीं कह सकते। बोरिस पैस्टरनेक की बात तो बहुत पुरानी नहीं है।"

इस समय सुन्दरलाल का घर आ गया था। एक अहाते में कई दो-मंज़िले मकान थे। छोटे-छोटे घर थे। टट्टी और रसोईखाना साथ था। एक ऊपर की मंज़िल वाला मकान सुन्दर ने लिया हुआ था।

सुन्दर ने एक कमरे में सोने के लिए एक लकड़ी की चौकी और उस पर एक चटाई बिछा रखी थी। इसी कमरे में दीवार के साथ खूँटी गड़ी थी, जिस पर उसकी धोती और अंगोछा और रिक्शा चलाने

के समय के कपड़े टँगे हुए थे। तख्त के पास एक छोटी-सी चौकी थी, जिस पर एक छोटा-सा लोहे का सन्दूक था। उसमें वह अपने कपड़े रखता था। इस कमरे के साथ एक और कमरा था, जिसमें लकड़ी के रैक बने थे। उनमें पुस्तकें तथा पढ़े हुए समाचार-पत्र रखे थे। रैक के आगे भूमि पर एक चटाई बिछी थी। चटाई पर एक डेस्क थी, जिस पर लिखने का सामान रखा था।

सुन्दर कृष्णराव को अपने घर पर ले गया। कृष्णराव उसका पुस्तकालय देखने लगा। कार्लमार्क्स, ऐन्जल्ज़, हक्सले, हेगल, डिजिलस, दयानन्द, शंकर, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस की लिखी पुस्तकें वहाँ भरी पड़ी थी। महाभारत, रामायण, उपनिषद् इत्यादि ग्रन्थ भी थे। यूरोप के बहुत-से देशों के इतिहास के साथ-साथ भारत के इतिहास के भी कई ग्रन्थ उस पुस्तकालय में विद्यमान थे। रैक पुस्तकों से ठसाठस भरे हुए थे। कृष्णराव ने हक्सले की पुस्तक निकाली और खोलकर देखने लगा। स्थान-स्थान पर पुस्तक में चिह्न लगे हुए थे।

जब कृष्णराव पुस्तकें देखने लगा तो सुन्दर रसोईघर में गया और स्टोव जलाकर चाय बनाने लगा। कृष्णराव देख रहा था कि वह एक अति विद्वान्, परन्तु सादा जीवन व्यतीत करने वाले युवक के घर में आ गया है। स्थान अत्यन्त ही साफ-सुथरा, परन्तु फर्नीचर-रहित था। घर में बिजली तो लगी थी, परन्तु अन्य सुख-सामग्री नहीं थी।

जब सुन्दर दो प्यालों में चाय और बिस्कुट लाया तो कृष्णराव विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। उसने चाय का एक प्याला उसके हाथ से लेकर, चटाई पर बैठते हुए कहा, "मैं नहीं जानता था कि तुम इतने पढ़े-लिखे युवक हो। यह एक सरमायादार समाज को लानत है कि तुम जैसा विद्वान् व्यक्ति रिक्शा चलाकर अपना पेट भरता है।"

"और मैं यदि किसी कम्युनिस्ट देश में होता तो आज से बहुत पहले किसी 'कन्सण्ट्रेशन कैम्प' में जीवन दान कर चुका होता।

"कृष्णराव ! यह डेमोक्रेटिक देशों में ही सम्भव है कि एक विद्वान् स्वेच्छा से पढ़ता लिखता और बोलता है। रिक्शा चलाना कोई बुरी बात नहीं है। बुरी बात है, अपनी आत्मा बेचना। वह मैं नहीं कर रहा।"

[४]

रेलके स्टेशन पर सदा काम मिलता था। इस कारण सुन्दर प्रायः सात बजे वहाँ पहुँच जाता था। बंगलौर से सवा सात बजे गाड़ी आती थी और इसमें बहुत भीड़-भाड़ होती थी।

सुन्दर अपनी रिक्शा लिये खड़ा था। एक औरत स्टेशन से निकली। वह ईसाई औरतों के-से कपड़े पहने हुए थी। हाथ में एक छोटा-सा सूटकेस था। सुन्दर ने देखा तो पहचान गया। वह मिसेज़ पाल थी। एक क्षण उसको अपने काम पर लज्जा-सी लगी, परन्तु दूसरे ही क्षण वह इस हीन भावना को अपने में से निकाल आगे बढ़ा और बोला, "मदर ! रिक्शा चाहिए ?"

"मदर !" मिसेज़ पाल ने चौंककर सुन्दर की ओर देखा और पहचान लिया। उसने कहा, "तुम ? सुन्दर, तुम रिक्शा चलाते हो !"

"हाँ मदर ! चलो छोड़ आऊँ। कहाँ चलना है ?" इतना कह उसने मिसेज़ पाल के हाथ से सूटकेस ले लिया।

मिसेज़ पाल को, अपने एक प्रिय विद्यार्थी को इस तरह कार्य करते देख बहुत दुःख हुआ। उसी क्षण उसे मिसेज़ स्मिथ के व्यवहार का स्मरण हो आया। इस आशा से कि कदाचित् अभी भी वह उसकी सहायता कर सके, वह उसके रिक्शा में बैठ गई। सुन्दर ने सूटकेस रिक्शा के हुड पर रख लिया और स्वयं लपककर साइकिल की गद्दी पर बैठ, पूछने लगा, "कहाँ चलूँ ?"

"सेंट एन्थोनी स्कूल के बोर्डिंग हाउस में।"

"तो आप यहाँ भी पढ़ाती हैं ?"

"हाँ, ! मेरा यहाँ तबादला हो गया है। मुझको अभी यहाँ आए तीन महीने ही हुए हैं। यहाँ तुम कब से हो ?"

"मुझे यहाँ आए दो वर्ष से अधिक हो गए हैं।"

"पहले कहाँ थे ?"

'बम्बई में एक सेठ की नौकरी करता था।"

मिसेज़ पाल सुन्दर के भागने के पश्चात् की घटनाओं का स्मरण करने लगी। सुन्दर समझ गया था कि कहाँ जाना है। इससे वह रिक्शा दौड़ाता हुआ वहाँ जा पहुँचा। स्कूल के पीछे, वहाँ की अध्यापिकाओं के लिए क्वार्टर बने थे। जब रिक्शा वहाँ पहुँची, तो एक नौकर क्वार्टर में से निकला और सूटकेस भीतर ले गया। मिसेज़ पाल ने भाड़ा देने के लिए अपना पर्स निकाला तो सुन्दर ने हाथ जोड़कर कहा, "मदर ! मैंने अभी आपका बहुत ऋण चुकाना है। कहिये, रोज़ घुमाने के लिए आ जाया करूँ ?"

"देखो, सवेरे के समय पैसा लेने से इन्कार किया जाय तो दिनभर मन्दी रहेगी।" इतना कह मिसेज़ पाल ने पर्स में से पचास नये पैसे निकाले, परन्तु सुन्दर ने वे नहीं लिए। उसने 'गुड डे मदर !' कहा और जाने के लिए रिक्शा घुमाई तो मिसेज़ पाल ने पुकारा, "सुन्दर ! ठहरो। भीतर आ जाओ। तुमसे बातें करनी हैं।"

सुन्दर एक क्षण तक विचार करता रहा। उसके पश्चात् रिक्शा एक ओर खड़ी कर, मिसेज़ पाल के पीछे-पीछे उसके ड्राइंग रूम में जा पहुँचा। मिसेज़ पाल एक कुर्सी पर बैठ गई और उसको सामने बैठा पूछने लगी, "रोज़ कितना कमा लेते हो ?"

"जब से अपनी रिक्शा बनवाई है, सात-आठ रुपए नित्य मिल जाते हैं। मैं प्रातः सात बजे से मध्याह्न एक बजे तक काम करता हूँ। पश्चात् भोजन कर विश्राम करता हूँ। सायंकाल प्रायः चार बजे से रात के आठ बजे तक स्वाध्याय करता हूँ। फिर रात भोजन कर आधा घण्टा टहलता

हूँ और तदनन्तर दस बजे सो जाता हूँ। प्रातः चार बजे उठता हूँ। स्नानादि से निवृत्त हो, पूजा कर मैं साढ़े पाँच बजे अवकाश पा जाता हूँ। एक घण्टा पढ़कर दूध पी, ठीक सात बजे काम पर पहुँच जाता हूँ।"

मिसेज़ पाल सुन्दर के मुख से सात-आठ रुपये रोज़ की आय की बात सुन विचार कर रही थी कि इतने रुपये रोज़ का काम वह उसको किस स्थान पर दिलवा सकती है, जिससे कि उसका यह रिक्शा चलाने का काम छूट जाय। उसने सुन्दर से पूछा, "अब तुम कितना पढ़ गए हो ?"

"मैं अंग्रेज़ी बहुत भली-भाँति पढ़, लिख और समझ सकता हूँ। दसवीं श्रेणी तक का गणित कर लेता हूँ। हिस्टरी, ज्योग्राफी भी बहुत स्टडी किया है। इसके अतिरिक्त जनरल लिटरेचर बहुत पढ़ा है।"

"कोई परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की क्या ?"

"नहीं, इसके लिए अवसर ही नहीं मिला।"

"तुमको नौकरी नहीं मिल सकती। मेरा विचार है कि तुम किसी स्कूल-कॉलेज में भर्ती हो जाओ। यह रिक्शा चलाने का काम कुछ अच्छा नहीं है। गुज़ारे के लिये मैं प्रबन्ध कर दूँगी।"

"धन्यवाद मदर ! जब मैं बम्बई से आया था, तो नौकरी के लिए मैंने बहुत यत्न किया था। दो महीने की भाग-दौड़ के पश्चात् मेरी समझ में आया कि न तो मैं नौकरी करने की योग्यता रखता हूँ, न ही इस दुनिया को मुझ जैसे व्यक्ति को नौकर रखने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। तब मैंने कोई मजदूरी का काम करने का निर्णय कर लिया। यह काम सुगमता से मिल गया है और फिर मैं इसमें बहुत सीमा तक स्वतन्त्र हूँ।

"मैं छः घण्टे से अधिक काम नहीं करता। शेष समय मैं अपनी मानसिक उन्नति में लगाता हूँ और अब दो वर्ष के उपरान्त मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मुझे नौकरी की आवश्यकता नहीं है।"

'तो क्या जीवनभर रिक्शा ही चलाते रहोगे ?''

''नहीं मदर ! मैंने अपने काम की योजना बना ली है। मैं लेखक बनने की तैयारी कर रहा हूँ। यों तो मैं अब भी लिख लेता हूँ; किन्तु प्रकाशक मेरे कार्य की ओर ध्यान न देकर, मेरी डिग्रियों को देखते हैं और वे मेरे पास हैं नहीं। इस कारण अब मैं स्वयं ही प्रकाशक बनने का विचार कर रहा हूँ।''

''किस विषय पर लिखते हो ?''

''मैंने एक पुस्तक 'भारतीय मीमांसा शास्त्र' नाम की लिखी थी। वह पुस्तक मैंने आठ-दस प्रकाशकों को दिखाई है। प्रायः सबने मेरे नाम के आगे उपाधि न देख, बिना पढ़े ही वह पाण्डुलिपि वापस कर दी है।

मैं एक प्रोफेसर साहब के बच्चों को नित्य ही स्कूल में ले जाता हूँ और छुट्टी होने पर उनको वापस ले आता हूँ। उनको मैंने अपनी पुस्तक दिखाई थी। उन्होंने कुछ पन्ने पढ़कर कहा था, 'बहुत सुन्दर लिखा है सुन्दर ! परन्तु यह पुस्तक जनसाधारण के उपयोग की नहीं है। विद्वानों के पास उस लेखक की पुस्तकें पढ़ने का समय ही कहाँ है, जिस पर किसी यूनिवर्सिटी की मुद्रा न लगी हो।'

''अतः मैंने गूढ़ तत्वों के विषय में न लिखकर, जनसाधारण के लिये और उनके समझने योग्य भाषा में, उनके ही मतलब की बातें लिखनी आरम्भ कर दी हैं। अर्थात् अब मैं उपन्यास लिखने का अभ्यास कर रहा हूँ।

''इसके छपवाने में भी वही कठिनाई है जो विद्वानों के लिये लिखी पुस्तकों के छपवाने में सम्मुख आई थी। उपन्यासों के प्रकाशक भी पूछते हैं—कौन-कौन उपन्यास पहले छपा है ? जब मैं बताता हूँ कि यह पहला ही है, इसे छपवाने के लिये लाया हूँ तो वे वह कह देते हैं, 'हमारे पास बीसियों पहले ही रखे हैं। आप किसी अन्य प्रकाशक के पास चले जाइये।'

"इस कारण मैंने विचार किया है कि एक-दो उपन्यास पहले स्वयं ही छापूँगा।"

"इसके लिये रुपया कहाँ से लाओगे ?"

"उसका प्रबन्ध कर रहा हूँ। इस समय मेरे पास दो सहस्र से अधिक रुपया होगा। कुछ और इकट्ठा कर लूँगा तो फिर छपवा लूँगा।"

"और यदि पुस्तक नहीं बिकी तो ?"

"ऐसी सम्भावना तो नहीं है। इस पर भी कुछ काल तक तपस्या करनी ही पड़ेगी।"

मिसेज़ पाल समझ गई कि सुन्दर उसकी सहायता की आवश्यकता की परिधि से निकल चुका है। वह स्वयं डेढ़ सौ रुपया मासिक की नौकरी करती थी। उसने विचार किया था कि पचास-साठ की चपरासी की नौकरी वह सुन्दर को दिलवा देगी अथवा यदि वह पढ़ना चाहे तो तीस रुपये का उसको स्टिपेंड दिलवा देगी। वह मन में विचार करती थी कि यह महान् विडम्बना है कि फिलॉसोफी पर लिखने वाला रिक्शा चलाता है और एक प्रोफेसर के बराबर कमाई कर लेता है।

मिसेज़ पाल सुन्दर के भीतर और बाहर की भिन्नता को समझने का प्रयत्न कर रही थी कि सुन्दर ने पूछ लिया, "मिस्टर पाल कैसे हैं ? वह यहाँ साथ नहीं आए क्या ?"

इस प्रश्न पर मिसेज़ पाल चौंक उठी। वह बितर-बितर सुन्दर का मुख देखने लगी। वास्तव में वह विचार कर रही थी कि सुन्दर को बताये अथवा नहीं। कुछ विचारकर वह बोली, "वे मुझको छोड़ गए हैं।"

"तलाक हो गया है ?"

"नहीं, हम कैथोलिकों में यह नहीं होता। मिस सिम्पसन को तुम जानते ही हो। वही, जिसने झूठ बोलकर तुमको बेंत लगवाये थे। वह मिस्टर पाल से म्युजिक सीखने लगी थी। फिर दोनों में सम्बन्ध हो गया। सिम्पसन बहुत अच्छा गाती है। अब वे दोनों भारत के टूर पर

गये हुए हैं। वह गाती है और मिस्टर पाल उसके साथ बजाते हैं। सुना है उनका यह टूर कामयाब हो रहा है। मुझसे पिछले चार वर्ष से वे बोलते नहीं हैं, न ही मेरे पास रहते हैं।"

'बहुत ही दुःखद घटना है यह।"

'मैं समझती हूँ कि मैं अब सुखी हूँ।"

"और कोई बेबी नहीं है मदर ?"

इस प्रश्न से मिसेज़ पाल की आँखें डबडबा आईं। सुन्दर ने यह देखा। उसे अपने प्रश्न पर पश्चात्ताप हो रहा था। उसने कहा, "क्षमा करें मदर! मुझको विदित नहीं था कि मैं यह पूछकर आपको दुःख पहुँचा रहा हूँ।"

मिसेज़ पाल ने अपने बैग में से रूमाल निकालकर आँखें पोंछ लीं और उठकर बोली, "अच्छा, कभी-कभी मिलते रहा करो। रात को मेरे खाने का समय साढ़े आठ बजे होता है। तुम्हारा सदैव उस समय स्वागत है।"

[५]

इसके पश्चात् सुन्दर सप्ताह में एक बार मिसेज़ पाल से मिलने के लिये जाने लगा। वह अब भी सुन्दर से वैसा ही स्नेह रखती थी, जैसा कि उसने अल्मोड़ा में रखा था। जब भी सुन्दर उसके साथ खाने पर बैठता, बातें होने लगतीं। मिसेज़ पाल यह अनुभव करती थीं कि सुन्दर अब बालक मात्र नहीं रहा। अब वह मानव-जीवन की गहनतम अभिव्यक्तियों को भली-भाँति समझने लगा है। एक-दो बार उसने उसको ईसाई धर्म में प्रविष्ट होने के विषय पर संकेत किया तो ऐसी बातें चलीं कि वह अपने में से भी ईसाई धर्म की निष्ठा लुप्त होती हुई अनुभव करने लगी।

उसने ऐसे ही विवादों में एक दिन पूछ लिया, "तो तुम किस धर्म को मानते हो ?"

'मानव धर्म को।"

"वह कौन-सा धर्म है ?"

"जो मनुष्यों ने बुद्धि से संगृहीत किया हुआ है। यह संसार एक असीम स्थान है। वैज्ञानिक इसकी सीमाओं तक पहुँचने का यत्न कर रहे हैं। जितनी दूर वे पहुँचते हैं, यह संसार उससे भी आगे और आगे ही दिखाई देने लगता है। आईन्स्टीन जैसे अद्वितीय प्रतिभा वाले व्यक्ति ने भी इसकी सीमा ढूँढते-ढूँढते थककर कह दिया था कि यह एक 'सरकल' में है। जो कुछ दूर और दूर दिखाई देता है, वह समीप का प्रतिबिम्ब मात्र ही है। मैं समझता हूँ कि यह विज्ञान की पराजय स्वीकार करने के समान ही है।

"इस कारण मुझे उपनिषद् की बात ही ठीक प्रतीत होती है। एक असीम सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, आनन्दमय शक्ति है, जिसको ईश्वर, गॉड और खुदा इत्यादि नामों से हम मनुष्य जानते हैं। यह सृष्टि, सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि उसी असीम आनन्दमय शक्ति के रूप-रूपान्तर हैं। वास्तव में हम भी उसी का एक रूप मात्र हैं। हम जैसी अनेकों योनियाँ तो इस पृथ्वी पर दृष्टिगोचर हो रही हैं। इस पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य अनेकों स्थान हैं, जहाँ उसके अन्य रूप अर्थात् योनियाँ हैं। हम उनकी गिनती नहीं कर सकते।

"मनुष्य योनि पूर्ण आनन्दमय नहीं है। इस पर भी हम उस आनन्दमय ज्योति के पर्याप्त समीप प्रतीत होते हैं। हम उस शक्ति में घुलमिल सकते हैं।

"अनेकों मीमांसकों का कथन है कि उस परब्रह्म-परमात्मा तक पहुँचने के लिये अभी कई सौ योनियाँ और हैं जिनको हमें पार करना पड़ता है और कई विद्वान् कहते हैं कि हम परमात्मा के सर्वथा समान हैं। दूसरे कहते हैं कि हममें और उसमें बहुत थोड़ा अन्तर है।

"कुछ भी हो, हम लाखों योनियों से ऊपर उठ चुके हैं। इस पर भी जब हम उन्नति के शिखर पर चढ़ते-चढ़ते थक जाते हैं तो फिर हम

नीचे की ओर देखने लगते हैं। अपने से इतर योनियों की कुछ सुविधाओं को देख, हम उनका अनुकरण करने लगते हैं।

"वे लोग जो ऊपर उठने में कठिनाई अनुभव करने लगते हैं, वे अपने जीवन के सम्मुख पशुओं के-से जीवन को आदर्श बना लेते हैं। प्रायः नास्तिक जिनमें वर्तमान काल के कोटि-कोटि जनों के पूज्य कार्ल-मार्क्स एक हैं, मनुष्य को पशुओं की कोटि में ले जाना चाहते हैं।

"कुछ नास्तिक हैं, जो मनुष्य को हिंसक पशुओं की भाँति रहने की प्रेरणा देते हैं। कुछ अन्य हैं, जो उसको पालतू पशु बनाना चाहते हैं।"

"कुछ भी हो। इस प्रकार से विचार करने वाले बेचारे उन्नति के मार्ग पर चलते-चलते थक गये प्रतीत होते हैं। उनके पाँव आगे चलने की अपेक्षा नीचे की ओर खिसकने लगे हैं। वे यह समझे कि उनका स्थान नीचे ही है, विचार करते हैं कि उनको सिंह-व्याघ्र इत्यादि बनना है अथवा गाय-बकरी।

"मैं मानव धर्म का अर्थ यह समझा हूँ कि हमें ऊपर उठते हुए उस आनन्दमय परिस्थिति में पहुँचना है, जिसका हम भूला-भटका हुआ अंश हैं।"

मिसेज़ पाल इस मस्तिष्क की उड़ान पर हँस पड़ी। उसने कहा, "यही तो भगवान के इकलौते पुत्र प्रभू यीशु मसीह कह गये हैं।"

"मैंने कब कहा है कि वे ऐसा नहीं कह गये ? मैंने तो यह कहा है कि जितनी स्पष्टता से उपनिषद् में वर्णन है, वैसा कहीं अन्यत्र नहीं।"

"क्या सब हिन्दू ऐसा ही मानते हैं ?"

"नहीं, इससे भिन्न विचार वाले लोग भी हैं। एक स्वामी दयानन्द हुए थे। वे इस संसार का आदि-अन्त तीन मौलिक पदार्थों में मानते थे। प्रकृति, आत्मा और परमात्मा। हममें प्रकृति यह शरीर है, आत्मा इसमें चेतन शक्ति है और परमात्मा सत्, चित्, आनन्द है। आत्मा सत् और चित् है और प्रकृति केवल चित् है।"

'परन्तु मदर ! सब हिन्दुओं में एक बात समान है। वह है वर्तमान अवस्था में, आत्मा की प्राणियों में उपस्थिति मानना। जितने भी चराचर जन्तु हैं, सबमें आत्मा है। यह आत्मा है जिसका शरीर के साथ विनाश नहीं होता। बार-बार जन्म लेता है, जब तक वह अपने ज्ञान और कर्म से इस संसार के मोहजाल से मुक्त नहीं हो जाता। आत्मा प्राणी में कर्म का करने वाला है और उन कर्मों के फल का भोक्ता है। कर्म का फल टल नहीं सकता। वह अवश्य मिलता है। हम तपस्या और प्रायश्चित्त से अपने बुरे कर्मों से मिलने वाले दुःख को कम कर सकते हैं। इस पर भी फल तो मिलता ही है।

"यह है हिन्दू फिलॉसोफी का सार। हम सब हिन्दू इस पर सहमत हैं। इस विचार से बौद्ध और जैन भी हिन्दुओं की परिधि में आ जाते हैं।"

मिसेज़ पाल हिन्दू फिलॉसोफी का ईसाई धर्म से मिलान कर रही थी। उसको स्मरण हो रहा था कि कैसे वह बचपन में, जब अपने माता-पिता से विहीन हो गई थी और उसके गाँव में पादरी आया था, जो उसको मिठाई खिलाता हुआ अपने साथ अनाथालय में ले आया था। वहाँ उसको पढ़ाया गया और ईसाई धर्म के संस्कार डाले गये। पश्चात वह स्वयं गाँव-गाँव में हिन्दू-धर्म के विरुद्ध प्रचार करने जाया करती थी। वह हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा और राधा-कृष्ण की लीला की हँसी उड़ाया करती थी। उसको स्मरण था कि वह बहुत तर्क देकर गाँव के भोले-भाले लोगों को ईसाई होने की प्रेरणा दिया करती थी।

इस पर भी वह एक भी ऐसे स्त्री अथवा पुरुष के विषय में नहीं जानती थी, जो उसकी अथवा उसके साथियों की युक्ति मान ईसाई हुआ हो। प्रायः निर्धन लोग भोजन, अन्न, शिक्षा पाने के लोभ में ईसाई हो जाते थे। कोई-कोई ऐसा भी होता था, जो सुन्दर पढ़ी-लिखी लड़की अथवा लड़के से विवाह करने के लोभ में ईसाई होता था। अधिकांश ईसाइयों की टीप-टाप, खर्चीला रहन-सहन देखकर धर्म

परिवर्तन कर लेते थे।

आज सुन्दर से बातें कर वह समझ रही थी कि वह उन दिनों कितनी मूर्ख थी जो इतनी विचारशील जाति को एक अन्धविश्वास के गर्त में गिराने का यत्न करती रही थी। वह अब समझ रही थी कि तब वे सीधे-सादे ग्रामीण उसकी युक्तियों को सुनकर क्यों हँस देते थे? उनके आत्मा में धँसी हुई गीता और उपनिषदों की फिलॉसोफी उसकी युक्तियों को कितना थोथा समझती होगी।

जब वह कहती थी—परमात्मा सातवें आसमान पर बैठा, हम प्राणियों के भले-बुरे को देखता है, तो वे लोग हँसते होंगे कि यह पढ़ी-लिखी लड़की इतना भी नहीं जानती कि आसमान कोई छत नहीं है। जब वह कहती थी कि यीशु मसीह परमात्मा का इकलौता बेटा था, उसकी शरण में जाने से मुक्ति मिलेगी, तो वे मन में कहते होंगे, सब संसार जब परमात्मा का बनाया हुआ है तो यीशु मसीह उसका इकलौता बेटा कैसा हो गया?

इस प्रकार के विचारों के बवण्डर में पड़, सुन्दर से बार-बार मिल, अपने में उठ रहे संघर्षों पर वह विचार करती रहती थी। इससे दिन-प्रतिदिन उसकी निष्ठा ईसाई मत, जो सब धर्मों से श्रेष्ठ माना जाता था, से उठती जाती थी।

मिसेज़ पाल तीस वर्ष की आयु की औरत थी। सुन्दर अभी बीस वर्ष का हुआ था। यदि वह कुछ छोटी अवस्था की होती तो सुन्दर से विवाह करने का यत्न करती। वह उससे प्रेम करने लगी थी। परन्तु जब-जब सुन्दर उसको मदर कहकर पुकारता था, उसको अपने विचारों पर लज्जा आने लगती थी।

[६]

सुन्दर की प्रथम पुस्तक छपने में एक वर्ष और लग गया। पुस्तक का नाम था 'आगे को'। यह पुस्तक उसने हिन्दी में लिखी। यह उपन्यास था, जो सुन्दर ने कई बार संशोधन करके लिखा था और फिर

उसे उसने अपने खर्चे से छपवा दिया। इसे छपवाने में उसका लगभग पौने तीन हज़ार रुपया व्यय हो गया। इसको छपवाने के लिए उसको बम्बई के छापेखाने से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। इसके अतिरिक्त उसने अपनी प्रकाशन-संस्था का नाम 'सर्व मंगल प्रकाशन' रखा और इसी नाम से पुस्तक छपवाई। उस घर, जिसमें वह रहता था, उसके बाहर एक 'सर्व मंगल प्रकाशन' का बोर्ड लगा दिया गया। पत्र-व्यवहार के लिए फार्म छपवा लिये और पुस्तक-विक्रेताओं से पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया। सबसे पहले उसने बम्बई, नागपुर, हैदराबाद, जबलपुर इत्यादि बड़े-बड़े नगरों में घूम-घूमकर, अपनी पुस्तक बिक्री की शर्त पर बेचने के लिए रखी। साथ ही वह तत् स्थानीय समाचार-पत्रों में विज्ञापन भी दे आया।

सुन्दर जानता था कि उसकी पुस्तक अर्थयुक्त और रसमय है। एक बार पाठकों के हाथ में गई तो फिर उसकी ख्याति फैलेगी। इस कारण वह मास में पन्द्रह दिन रिक्शा चलाता था और उससे जो कुछ भी बचा पाता था, वह नगर-नगर घूमने और विज्ञापनों में लगा देता था।

छः मास के अनथक प्रयत्न से उसने देखा कि बाजार में पुस्तक की माँग होने लगी है। इस समय उसने बिक्री की गई पुस्तकों का हिसाब किया तो विदित हुआ कि एक सहस्र के लगभग पुस्तकें बिक चुकी थीं। इसका रुपया बटोरने पर उसकी समझ में आया कि सब प्रकार के खर्चे निकालकर, दो सहस्र रुपये उसके बैंक में फिर जमा हो गये हैं।

अब उसने दूसरी पुस्तक लिखनी आरम्भ कर दी। इस बार उसको स्वयं पर विश्वास था। उसने पुस्तक का नाम रखा—'पिछड़े हुए'। यह पुस्तक छपते और मार्केट में रखते-रखते एक वर्ष और व्यतीत हो गया। अभी तक वह अपने निर्वाह के लिए रिक्शा चलाता था। स्वाध्याय और लिखने के समय में से कुछ समय निकालकर, व्यवसाय की उन्नति करने में लगा रहता था।

उसकी दूसरी पुस्तक जब मार्केट में आई तो इस बार उसको उतना यत्न नहीं करना पड़ा, जितना पहली पुस्तक के समय करना पड़ा था। इस बार तो पुस्तक पर समालोचनाएँ भी आने लगी थीं। इससे उत्साह से भरा, वह तीसरी पुस्तक लिखने में लग गया।

इस सब समय में वह यदा-कदा मिसेज़ पाल से मिलता रहता था। मिसेज़ पाल भी सुन्दर के व्यवसाय में रुचि ले रही थी। जब तीसरी पुस्तक के छापने का समय आया तो उसको रिक्शा चलाने के लिये समय मिलना कठिन हो गया। इस समय तक प्रथम पुस्तक का द्वितीय संस्करण निकलने वाला हो गया था।

एक दिन वह मिसेज़ पाल के पास अपनी तीसरी पुस्तक की पाण्डु-लिपि लेकर आया तो उसने पाण्डुलिपि को पढ़ने के लिये अपने पास रख पूछा, "अब कारोबार कैसा है ?"

"मदर ! आज अपनी प्रथम पुस्तक की अन्तिम प्रति अपने स्टाक में से बेचकर आ रहा हूँ। मेरा अभिप्राय है कि अब मुझे उसका द्वितीय संस्करण छपवाना है।"

"रुपये-पैसे की क्या स्थिति है ?"

"बैंक में इस समय तीन हज़ार से ऊपर हैं। बिक्री के रुपये भी आ रहे हैं। मैं समझता हूँ कि काम तो बढ़ेगा ही। एक बात और हो गई है। अब मुझे रिक्शा चलाने के लिये समय नहीं मिल पा रहा है।"

"इसकी अब आवश्यकता भी तो नहीं रही है न ?"

"आवश्यकता तो एक वर्ष से नहीं थी, परन्तु अब इसके लिये अव-काश नहीं है। आशा है उसके बिना भी पूँजी बढ़ती चली जावेगी।"

"मैं समझती हूँ कि शीघ्र ही तुम्हें प्रकाशन-विभाग किसी अन्य के हाथ में दे देना पड़ेगा। अन्यथा तुमको लिखने का भी अवकाश नहीं मिल पायेगा।"

इस सम्भावना की कल्पना कर सुन्दर गम्भीर विचार में पड़ गया। उसे चुप देख मिसेज़ पाल ने कहा, "यदि तुम्हारा कोई भाई अथवा

लड़का होता तो काम बन जाता। अब क्या करोगे ? किसी नौकर को रखोगे तो वह दिल लगाकर काम नहीं कर सकेगा।"

"यह तो करना ही होगा। उसको दिल लगाकर काम करना होगा।" फिर वह मुस्कुराकर कहने लगा, "मदर ! भाई, पुत्र बाजार में बिकते होते तो मैं फौरन खरीदकर ले आता।"

मिसेज़ पाल को भी हंसी आगई, बोली, "एक काम करो सुन्दर !"

"क्या मदर ?"

"तुम विवाह कर लो। कोई पढ़ी-लिखी पत्नी ले आओ, जो तुम्हारा व्यवसाय में हाथ बंटा सके।"

सुन्दर हँस पड़ा। उसने कहा, "अभी तो अपने खाने की ही चिन्ता नहीं मिटी। आप कहती हैं कि एक बीवी ले आऊँ। काम वह कुछ करेगी अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता; हाँ, खाने को एक पेट और आ जावेगा।"

"तो ऐसा करो, अपनी मदर को काम पर लगा लो।"

"आपको ? पर आप तो डेढ़ सौ रुपया मासिक वेतन पाती हैं। आपको मैं कैसे इतना वेतन दे सकता हूँ ?"

"डेढ़ सौ नहीं सुन्दर ! पौने दो सौ। परन्तु तुम्हारे पास तो मैं अवैतनिक पार्ट-टाइम काम करूँगी।"

"नहीं मदर ! मैं आपको इस झमेले में घसीटना नहीं चाहता। हाँ, एक स्वप्न मेरे मन में है। जब आप स्कूल से रिटायर हो जावेंगी, तब तक मैं एक बाल-बच्चेदार आदमी बन जाऊँगा। उस समय मदर को अपने घर में ले जाकर, उसके ऋण से उऋण होने का यत्न करूँगा।"

मिसेज पाल हँस पड़ी। हंसते हुए उसकी आँखों में से आँसू छलक आये। अपने आँसू पोंछते हुए उसने कहा, "परन्तु मैं तो बूढ़ी होने से पूर्व ही अपने बेटे के घर में जाना चाहती हूँ।"

"सच ?" सुन्दर ने आनन्दोल्लास में कहा, "तो मदर ! मुझे

आशीर्वाद दो कि मैं ऐसा कर सकूँ और शीघ्र ही अपनी माँ की आशाएँ पूर्ण करूँ।"

अगले दिन सुन्दर ने अपनी रिक्शा बेच डाली और प्रातः से सायं-काल तक वह अपनी पुस्तकों के काम में लग गया।

[७]

अब उसको पाठकों के पत्र आने लगे थे। कई लिखने वाले उसकी प्रशंसा करते थे। कई अनेकानेक विषयों पर उससे प्रश्न पूछते थे। कुछ ऐसे लिखने वाले भी थे, जो उसकी कहानी के परिणाम से असन्तोष प्रकट करते थे।

एक दिन बहुत ही बढ़िया लिफाफे में एक पत्र आया। लिफाफा खोलने पर बहुत ही सुन्दर कागज़ पर, बढ़िया सुलेख में पत्र लिखा हुआ मिला। सुन्दर ने पत्र पढ़ने से पहले भेजने वाले का नाम और पता देखा। यह सब देख, वह स्तब्ध रह गया। पत्र भावना का लिखा हुआ था। पता सेठ यादवदेवजी का था। कितनी देर तक वह यह विचार करता रहा कि भावना उसको पहचान गई है अथवा नहीं। इसका निर्णय तो पत्र पढ़ने से ही हो सकता था और वह पत्र पढ़ने में झिझक अनुभव कर रहा था। वह विचार करता था कि यदि उसके पिता को यह ज्ञान हो गया कि लेखक सुन्दर उनका नौकर सुन्दर ही है, तब वे क्या करेंगे?

उसने पत्र पढ़ा। लिखा था—"चढ़ा चाँद छिपा नहीं रह सकता। उसकी शीतलता, सुन्दरता और सरसता सबको अनुभव होती है। जो आँखें नहीं रखते, वे भी अनुभव करते हैं कि किसी प्रकार का रस-संचार उनके शरीर में हो रहा है।

"यही बात एक प्रतिभाशाली लेखक की है। वह तो निर्जीव चाँद की भाँति अपनी कुमुदनी का प्रसार करता है। वह नहीं जानता कि किस-किस के हृदय को काम-बाणों से बींध रहा है अथवा किसके विरह-

जनित संताप को सुरभित कमलदलों की भाँति शांत कर रहा है। अनेकों पाठक ऐसे भी हैं, जो अज्ञानवश नहीं जानते कि उनमें रस का संचार भी चाँद-रूपी लेखक की कौमुदी देती है।

"कई पाठक बालक की भाँति उस चाँद को पकड़ने के लिए माँ की गोद में उछल-कूद मचाने लगते हैं। परन्तु पकड़ पाना तो दूर, उस दूरी में, जिस पर वह रहता है, कुछ कर सकना भी उनके लिए सम्भव नहीं होता।

"इस पर भी बालक हाथ बढ़ा उस ओर जाने का यत्न करता रहता है। एक बात तो है। वह चाँद की कौमुदी है, जो उसे बालक के मन में आह्लाद उत्पन्न करती है।

"आपकी द्वितीय पुस्तक तो पहले से भी अधिक रुचिकर लगी। कदाचित् चाँद की एक कला बढ़ गई है। इन बढ़ती कलाओं को देखकर तो पूर्णचन्द्र की कला देखने की लालसा जागृत हो उठी है। उत्तरोत्तर बढ़ती कलाओं में सुन्दर लेखक को देखने के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा करती रहती हूँ। आप आगामी कला से युक्त कब होने वाले हैं ?

"जहाँ पूर्ण कलायुक्त चन्द्र को देखने की लालसा मन में भर रही है, वहाँ कलाविहीन चन्द्र कहाँ था और कैसे वह कलायुक्त होने लगा है, जानने की इच्छा भी जाग पड़ी है।

"लेखक महोदय या तो अपना इतिहास छपवा दें अथवा जिज्ञासु को लिखने की कृपा करें।

"मैंने आपकी पुस्तकों को इतना पसन्द किया है कि मैं अपनी बीसियों सखियों को उन्हें उपहार के रूप में दे चुकी हूँ। मेरी प्रार्थना है कि पत्रोत्तर अवश्य दें। वास्तव में उत्तर में एक ही बात तो जानने की इच्छा व्यक्त की है और वह है आपका संक्षिप्त जीवन-चरित्र। उसमें इसका विशेष रूप से उल्लेख हो कि आप लेखक किस प्रकार बने। पत्र लिखने वाली भी बहुत उच्च अभिलाषाएँ रखती है और एक सफल लेखक से प्रोत्साहन

पाना चाहती है।

"कष्ट के लिए क्षमा चाहती हूँ।

भावना"

सुन्दर को विश्वास हो रहा था कि भावना के मन में अभी निश्चय नहीं है कि यह वही सुन्दर है, जो उससे अंग्रेज़ी और हिन्दी पढ़ता रहा है। उसको सन्देह तो अवश्य हुआ है। वह विचार करता था कि उसके अज्ञातवास का काल समाप्त हुआ अथवा नहीं। इस समय उसकी तीसरी पुस्तक प्रेस में थी। मिसेज़ पाल ने उसे पढ़कर निर्णय दे दिया था कि वह पिछली दो पुस्तकों से भी बढ़कर है। इससे वह यह समझने लगा था कि अब वह स्वतन्त्र मानयुक्त जीवन व्यतीत करने के योग्य हो गया है। अब रत्नबाबू को उसके साथ बैठकर खाना खाने में अपमानित होने का कोई कारण नहीं रह गया है और वह स्वयं भी सेठ जी से हाथ मिलाने में किसी प्रकार के संकोच का कारण नहीं देखता था। इस पर भी यदि सेठ जी के परिवार के लोग उससे घृणा करेंगे तो उसके लिए चिन्ता का विषय नहीं। वह अपनी दुनिया सर्वथा पृथक् बना रहा है और वह सुन्दर बन रही है। उसको एक माँ मिल गई थी। अब बीवी भी मिल जावेगी।

इतना विचारकर उसने स्वयं को छिपाकर रखने में कोई कारण नहीं समझा। उसने भावना के पत्र का उत्तर देते हुए लिखा—

"सुश्री भावनादेवी जी,

"यह जानकर बहुत ही प्रसन्नता हुई कि आपने मेरी दो पुस्तकें पढ़ी हैं और पसन्द की हैं। इससे मेरा साहस कई गुना बढ़ गया है। मेरी तीसरी पुस्तक 'नव जीवन' मुद्रण के लिए चली गई है। आशा करता हूँ कि वह अगले मास आपके हाथ में होगी।

रहा आपके प्रश्न का उत्तर। एक ग्यारह वर्ष का बालक अल्मोड़ा के बस के अड्डे पर खड़ा, सेठ यादवदेव त्रिकमजी द्वारा नौकर रखा गया। सेठ जी उसे बम्बई ले आए। नौकरी करता हुआ वह सेठ जी की

लड़की से पढ़ता भी रहा।

"शेष तो आप जानती ही हैं। जब उस सुन्दर के कारण सेठ जी के परिवार में वैमनस्य बढ़ने लगा तो उसने उनसे छुट्टी ले ली और पूना चला आया। यहाँ तीन मास तक नौकरी के लिये व्यर्थ यत्न कर साइकल-रिक्शा चलाने का काम करने लगा।

"आपकी शिक्षा के फलस्वरूप तथा बम्बई से आते समय वेतन-स्वरूप एक सहस्र के लगभग रुपया सेठ जी से मिलने के कारण और भगवान् की असीम कृपा से वह सुन्दर अब लेखक सुन्दर हो गया है।

"यह लेखन-कार्य कब पूर्णता को प्राप्त होगा, कहना कठिन है। पूर्णता तो भगवान का गुण है। उसको कदाचित् इस जन्म में प्राप्त करना कठिन होगा।

"आशा है आपके माताजी तथा पिताजी स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे। उन दोनों आदरणीय को मेरा करबद्ध प्रणाम कह देना। मैंने उनका अन्न खाया है और उनकी सुखद छाया के नीचे पलकर मैंने अद्भुत उन्नति की है। इसके लिये मैं सदा उनका आभारी रहूँगा।

'यदि मेरे जैसा तुच्छ व्यक्ति कभी उनकी कोई सेवा कर सका, तो मुझको अति प्रसन्नता होगी।

भवदीय—

सुन्दर"

चतुर्थ परिच्छेद

[१]

सुन्दर भावना से और पत्र पाने की आशा करता था। वह समझता था कि अधिक से अधिक उस पत्र में सेठ जी की ओर से यह आशा प्रकट की जायेगी कि वह यदि कभी बम्बई आये तो उनसे अवश्य मिले। वह यह भी आशा करता था कि रत्नलाल और मणिलाल का भी कुछ समाचार भावना के पत्र में आयेगा।

परन्तु पन्द्रह दिन तक कोई पत्र नहीं आया। पुस्तक छपकर जिल्दसाज़ के यहां चली गई थी और वह इसके लिए बम्बई जाना चाहता था। उसके पास लगभग चार सौ पुस्तकों के आर्डर आ गये थे और वह उनको बम्बई से ही भिजवा देने का प्रबन्ध करना चाहता था। वह मन में विचार कर रहा था कि यदि भावना का निमन्त्रण आ जाता तो वह निस्संकोच उससे मिलने जाता। पुरानी स्मृतियाँ उसके मन में उभर आई थीं।

सुन्दर ने जिल्दसाज़ को एक पत्र लिखकर पूछा था कि किस दिन पुस्तक तैयार कर वह दे सकेगा। वह उसी दिन बम्बई जाना चाहता था। उत्तर की प्रतिक्षा में वह ठहरा हुआ था।

अब उसने पुस्तकों के स्टाक के लिए अपने घर के नीचे की दो दुकानें भाड़े पर ले ली थीं। वहीं उसने अपना कार्यालय भी बना लिया था और गोदाम भी।

वह मध्याह्न के भोजन के लिए जाने वाला था। अभी तक उसने कोई नौकर नहीं रखा था। स्वयं ही पार्सल बनाता, बाईसिकल के पीछे लादकर ले जाता और रेल पर अथवा डाकखाने में बुक करवा आता था। स्वयं ही चिट्ठी-पत्री करता था और स्वयं ही हिसाब-किताब का काम भी करता था।

अतएव भोजन के लिए जाते समय दुकान बन्द कर जाना होता था। वह अभी दुकान बन्द कर ही रहा था कि एक बहुत बड़ी मोटरकार उसकी दुकान के सामने आ खड़ी हुई। वह उत्सुकता से देखने लगा कि कौन आया है। उसमें से सेठ यादवदेव उतर रहे थे। सुन्दर लपककर बढ़, उनके चरण स्पर्श करने लगा।

सेठ जी ने उसको उठाकर गले से लगा लिया और पीठ पर हाथ फेर आशीर्वाद दे कहा, "सुन्दर ! आज चार वर्ष होने को आ रहे हैं, किन्तु तुमने कभी भी अपना समाचार तक नहीं दिया।"

सुन्दर मुस्कराते हुए सेठ जी के मुख की ओर देखकर बोला, "बालक चाँद को पकड़नें का व्यर्थ यत्न नहीं करना चाहता था।"

सेठ जी ने भावना का पत्र और उसके उत्तर में सुन्दर की ओर से भावना को भेजा गया पत्र दोनों ही पढ़ें थे। इस कारण वे भी खिल-खिलाकर हंस पड़े। बोले, "दुकान बन्द कर किधर जा रहे थे ?"

"भोजन करने।"

"कहाँ करते हो भोजन ?"

"होटल में।"

"और रहते कहाँ हो ?"

"रहने का स्थान यहीं ऊपर ही है। ये दो दुकानें हैं।"

"चलो तुम्हारा घर और दुकान तो देख लें।"

सुन्दर ने दुकान खोलकर सेठ जी को अपना स्टाकरूम और कार्यालय दिखाया। कार्यालय की मेज़ पर बैंक की पासबुक पड़ी हुई थी। सेठ जी ने मुस्कराते हुए पासबुक का निरीक्षण कर लिया। उस समय सुन्दर के बैंक में दो सहस्र सात सौ अस्सी रुपये जमा थे।

कार्यालय देखने के पश्चात् सेठ जी सुन्दर का घर देखने के लिये चल पड़े। उसके कमरे में सोने के लिये लकड़ी का तख्त था जिस पर चटाई और तकिये के स्थान पर पुस्तकों का ढेर देखकर, सेठ जी खिलखिलाकर हंस पड़े।

जब सुन्दर ने इस हँसी को समझने के लिये सेठ जी के मुख की ओर देखा, तो सेठ जी ने उसकी पीठ पर हाथ फेर, उसको शाबाशी देते हुए कहा, "मेरी आशाओं से अधिक है।" फिर बोले, "अच्छा चलो। मैं भी प्रातःकाल का चला हुआ हूँ। भोजन नहीं किया है। मैं भी तुम्हारे साथ ही भोजन करूँगा।"

"आपके लिये तो मेरा होटल उपयुक्त नहीं होगा।"

"परन्तु मेरा होटल तो तुम्हारे लिये उपयुक्त होगा न ?"

लज्जित हो सुन्दर मौन रहा। सेठ और सुन्दर कार्लटन होटल में जा बैठे। ड्राईवर को एक रुपया देकर खाना खाने के लिये भेज दिया गया।

जब होटल में खाना परसा जाने लगा तो सेठ जी ने बात चला दी। उन्होंने कहा, "मेरी दृष्टि में एक लेखक कभी लखपति नहीं बन सकता, किन्तु मेरी आकांक्षा तुम्हें लखपति देखने की है।"

"इससे क्या होगा ?" सुन्दर ने समझते हुए भी न समझने का भाव बनाते हुए कहा। उसने अपने कथन की व्याख्या करते हुए कहा, "एक परिवार के सुख और आराम के लिये तो लाखों रुपये नहीं चाहियें। उसका निर्वाह तो कम में भी हो जाता है।"

"मैं समझता हूँ कि एक अच्छा लेखक एक मिल के मालिक से जनता का अधिक उपकार कर सकता है। यदि एक मिल का मालिक

लाखों रुपये कमा सकता है तो एक लेखक क्यों नहीं ? परन्तु आज समाज में कुछ विचित्रता है। इसलिये मैं कहता हूँ कि तुम लाखों क्यों नहीं पैदा कर सकते ?"

"यह तो समाज की दुर्व्यवस्था के कारण है। इसमें एक कारण और भी है। वह है उत्पादन और माँग की बात। लेखकों का उत्पादन माँग से अधिक हो रहा है। आज समाज में पढ़ने वालों की संख्या कम है और पढ़े हुओं में बेकारी अधिक होने से लेखकों की संख्या बढ़ रही है।"

"तुम ठीक कहते हो सुन्दर! परन्तु एक बात और भी है। हमारे देश में प्रकाशक इतने बुद्धिमान नहीं हैं कि वे अच्छे-बुरे लेखक में भेद-भाव कर सकें और सरकार पार्टी के विचार वाले लेखकों का पृष्ठ-पोषण करती है।"

सुन्दर सेठ जी के विश्लेषण से सहमत नहीं था। उसका कहना था, "प्रजातन्त्रात्मक राज्य-पद्धति में सरकार प्रजा को अपने विचार का समझती है और उस विचार के लेखकों को प्रोत्साहन देना प्रजा के विचारों का समर्थन मानती है।"

"जो लेखक प्रजा में किसी नवीन अथवा प्रजा की रुचि के विपरीत विचार उपस्थित करता है, वह प्रजा, प्रकाशक अथवा राज्य के पृष्ठ-पोषण की आशा से नहीं करता। वह तो निर्धन रहेगा ही। उसको निर्धन रहने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

"मैं, लेखक क्या आशा करता है और क्या नहीं करता, की बात नहीं कर रहा। मैं देश की सरकार और धनी-मानी लोगों के कर्त्तव्य की बात कहता हूँ।

"इस युग की विडम्बना यह है कि हम प्रत्येक बात को राजनीति की कसौटी पर घिसते हैं। मनुष्यता के विचार से नहीं देखते।"

खाना समाप्त हुआ तो सेठ जी ने होटल का बिल देकर सुन्दर से कहा, "चलो, तुम्हारे घर चलें। मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ।"

"आइये।"

दोनों मोटर में सवार हो पुनः सुन्दर के कमरे में जा पहुँचे। वहां सोने के लिए लकड़ी की चौकी, जिस पर चटाई बिछी थी, उस पर दोनों बैठ गए और बातचीत होने लगी।

सेठ जी ने बताया, "भावना ने तुम्हारी प्रथम पुस्तक पढ़ी तो उसने पुस्तक मुझे देकर कहा, 'पिताजी, इसको अवश्य पढ़िए।' मैं उपन्यास नहीं पढ़ा करता। परन्तु जब भावना ने आग्रह किया तो पढ़ने लगा। पुस्तक को आरम्भ से अन्त तक पढ़ गया। जैसे अपने जीवन से पृथक् होकर स्वप्न में बनते-बिगड़ते चित्र देखने में कोई लीन हो जाता है, वैसा ही पुस्तक पढ़ते समय हुआ। पुस्तक पढ़ने के कई दिन पीछे तक भी, उसमें लिखी घटनाओं के तारतम्य पर, कई दिन तक मनन करता रहा। इसके कुछ दिन पश्चात् भावना ने तम्हारी दूसरी पुस्तक पढ़ी, तो मैं पुस्तक-विक्रेताओं से तुम्हारी पुस्तक की बिक्री के विषय में पूछने लगा। उनसे सदा सन्तोषजनक उत्तर पा मैं प्रसन्न था कि जनता एक अच्छे लेखक का मान करती है। एक दिन भावना ने मुझ से कहा कि उन पुस्तकों का लेखक हमारा सुन्दर ही है। उसने अपना और तुम्हारा पत्र दिखाया। तब से ही मैं विचार कर रहा था कि तुम्हारे विषय में क्या किया जाय। मेरा अनुमान था कि तुम इस समय आर्थिक संकट में होगे। तुम तीसरी पुस्तक को प्रकाशित करने का विज्ञापन दे रहे हो। अतः मैं सामयिक सहायता के लिए पाँच सहस्र रुपया, जो तुम्हारा ही हमारे पास जमा था, लेकर आया हूँ।

"यहाँ आकर मुझको पता चला है कि स्थिति उतनी संकटमय नहीं है, जितनी मैं समझता था। इस पर भी मुझे तुम्हारी अवस्था पर सन्तोष नहीं। हम दोनों को मिलकर कोई उपाय ढूंढना चाहिये, जिससे मुझको सन्तोष हो सके।"

"मैं एक-दो दिन में बम्बई आने वाला हूँ। अभी मैं अपने जिल्द-साज़ के पत्र की प्रतिक्षा कर रहा हूँ। तब मैं वहाँ तीन-चार दिन रहूँगा और

आपके प्रस्ताव पर विचार कर लिया जावेगा।"

"भावना अब बी० ए० पास कर चुकी है। वह तुमसे मिलने के लिए मेरे साथ ही आने वाली थी; परन्तु मैंने ही मना कर दिया। मैं समझता था कि यहाँ से तुमको ही साथ ले चलूँगा।"

"आपकी आज्ञा को मैं कैसे टाल सकता हूँ? मैं आपके साथ ही चलूँगा।"

सेठ जी ने उसको रुपये देते हुए कहा, "यह अपने पाँच सहस्र रुपये रख लो। हिसाब-किताब फिर पीछे होता रहेगा।"

"यह मेरे कैसे हैं? मेरा वेतन तो आपने पहले ही भिजवा दिया था।"

"यह तुम्हारे कमीशन के रुपये हैं, जो प्रतिमास तुम भावना की माँ को दे दिया करते थे। वह उन रुपयों को बैंक में जमा करा देती थी।

"हमारा विचार था कि तुम पूना में आकर अपना पता भेजोगे। तुम्हारे बम्बई से चलते समय हमने तुम्हारे पीछे एक आदमी भी, तुम्हारी गतिविधियों को देखने के लिए भेजा था, परन्तु तुमने शायद उसे चोर समझकर चकमा दे दिया। पश्चात् बहुत यत्न करने पर भी हम तुम्हारा पता नहीं पा सके। अन्यथा यह रुपया हम तुम्हें देकर, पूना में तुम्हारे लिए एक कपड़े की दुकान करवाने वाले थे।"

सुन्दर चकित रह गया। उसने रुपयों का चैक वापस करते हुए कहा, "यह रुपया मेरा नहीं है। इस पर भी यदि आवश्यक़ता पड़ी, तो आपसे सहायता लूँगा। परन्तु यह सहायता लेनी तो बम्बई चलकर योजना बनाने के पश्चात् ही निर्णय की जा सकेगी।"

सुन्दर ने अपना सूटकेस उठाया और सेठ जी के साथ हो लिया।

[२]

जब से सुन्दर सेठ तथा भावना के नाम पत्र देकर बम्बई से चला था, तब से सेठ के परिवार में भारी परिवर्तन हो रहे थे। रत्नलाल तो

अगले दिन ही मकान छोड़कर होटल में रहने के लिये चला गया। उसने एलिफेंस्टन होटल में एक कमरे का सैट दो सौ रुपये माहवार पर किराये पर ले लिया और लगभग तीन सौ रुपया माहवार खाने के लिये देकर रहने लगा। रत्नलाल ने अपने पिता को लिख दिया कि वह अपने चाचा का मकान छोड़, होटल में रहने लगा है। उसके पिता ने इसका कारण पूछा और इससे सम्बन्धित एक पत्र अपने भाई को भी लिखा।

सेठ यादव ने उसके उत्तर में केवल यही लिखा कि रत्नलाल की आय इतनी अधिक हो गई है कि उसको घर का साधारण खाना और रहन-सहन पसन्द नहीं है। इसके विपरीत रत्नलाल ने अपने पिता को भावना के विषय में बहुत कुछ लिखा था।

यह सब पढ़ रत्नलाल का पिता रघुवीर बम्बई चला आया। वह पहले भी जब आता था, अपने भाई के पास ही ठहरा करता था। इस बार भी उसने यही उचित समझा। रत्नलाल ने लिखा था कि भावना घर के एक नौकर से अनुचित सम्बन्ध रखती प्रतीत होती है। कम से कम उसका उसके प्रति गहरा लगाव तो है ही। उसके पिता उसका विवाह करना नहीं चाहते और बात इतनी बिगड़ गई प्रतीत होती है कि मैंने वहाँ रहना उचित नहीं समझा।

रघुवीर ने सुन्दर को देखा था और सुन्दर की सूरत-शक्ल तथा उसका भावना से मेलजोल का विचार कर, रत्नलाल की बात पर विश्वास कर लेना कोई कठिन बात नहीं थी। वह जब बम्बई आया तो सेठ उस समय घर पर नहीं था। वह 'मिल' को गया हुआ था। भावना स्कूल गई थी, राधा घर पर थी। सेठ ने भाभी से रत्नलाल के विषय में पूछा तो उसने सारा वृत्तान्त बता दिया।

उसका कहना था "सुमित्रा अपने भाई की सगाई भावना से करना चाहती थी। भावना के पिता इस बात को मान नहीं रहे थे। इस पर झगड़ा शुरू हुआ था। मुझ को तो रत्नलाल का साला मोहन पसन्द है, किन्तु मेरी सुनता कौन है इस घर में?"

रघुवीर ने भी मोहन को देखा था। वे पाँच भाई और दो बहिनें थीं। मोहन के पिता की सराफे की दुकान थी। सोना-चाँदी का व्यापार होता था। इस पर भी परिवार इतना लम्बा-चौड़ा था कि बंटवारा होने पर किसी के पल्ले कुछ विशेष नहीं आता। साथ ही मोहन शरीर से भी अति दुर्बल प्रतीत होता था। इस समय रघुवीर को सुन्दर की याद आ गई। उसने पूछा, बहू "वह तुम्हारा नौकर सुन्दर कहाँ है ?"

"वह तो नौकरी छोड़ गया है।"

"क्यों ?"

"रत्नलाल ने भावना के पिताजी को भावना और सुन्दर के विषय में कुछ बताया। इससे उनके मन में सुन्दर के विषय में जांच-पड़ताल करने की इच्छा उत्पन्न हो गई। इससे पहले तो सुन्दर के भावना से किसी प्रकार के सम्बन्ध की बात नहीं उठी थी। जब रत्नलाल के साले वाली बात नहीं मानी गई, तो उसने यह लांछन लगा दिया। भावना के पिता ने देख-रेख और जांच की तो उनको सुन्दर एक योग्य और ईमानदार तथा पढ़ा-लिखा लड़का प्रतीत हुआ। इतना ही नहीं, वे उसे दामाद बनने के योग्य भी समझने लग गये। वे उसको मिल में किसी अच्छे काम पर नौकर कर, उसकी योग्यता की परीक्षा लेना चाहते थे। यह रत्नलाल को पता चल गया। इससे चाचा-भतीजे में तू-तू मैं-मैं हो गई।

"इस झगड़े को सुन्दर ने भी देखा और इसका कारण समझ, एक रात वह चुपचाप यहाँ से चला गया। अब हममें से कोई नहीं जानता कि वह कहाँ है।"

"क्या यह सत्य है कि भावना और सुन्दर में कोई सम्बन्ध था ?"

"मैं नहीं जानती। मैंने ऐसी कोई बात कभी नहीं देखी, जिससे मैं इस परिणाम पर पहुँचती। आपके भाई ने क्या देखा, यह उन्होंने मुझे बताया नहीं। वे केवल इतना कहते थे कि सुन्दर बहुत ही योग्य और

चरित्रवान लड़का है। वे कहते थे कि उसको मिल में किसी अच्छे पद पर लगाकर, उसको व्यापार का ज्ञान कराएंगे। जब वह कमाने-खाने लगेगा तो उसका विवाह भावना से कर देंगे।"

"बहू ! क्या तुमको भी यह बात पसन्द है ?"

"मैं एक औरत हूँ, घर से बाहर की बात क्या जानूं ! मुझको इस सम्बन्ध में केवल यह आपत्ति प्रतीत होती थी कि सुन्दर अपनी बिरादरी का नहीं है। वह अपने देश का भी नहीं है। हम यह भी नहीं जानते कि वह कौन-सी जाति का है और किस धर्म को मानता है। सुना है बचपन में वह ईसाइयों के अनाथालय में रहा है। क्या जाने उसके मन में ईसाई-धर्म की छाप हो।"

राधा के कथन से लाला रघुवीर को चाचा-भतीजे में इतने बड़े झगड़े का कारण, जिससे भतीजा घर छोड़ आठ-नौ सौ रुपये महीने का खर्चा सिर पर बाँध बैठा हो, समझ में नहीं आया।

मध्याह्न के समय सेठ यादव घर पर खाना खाने के लिए आया तो अपने भाई को वहाँ देख, प्रसन्न हो, चरण-स्पर्श कर बोला, "दादा, कैसे आये ? आने की सूचना भी नहीं दी। स्नानादि किया है अथवा नहीं ?"

"हाँ, स्नान कर चुका हूँ। तुम्हारी बहू से तुम्हारे और रत्नलाल के झगड़े की कथा, जैसी वह बता सकी है, सुन चुका हूँ।"

"देखो यादव ! रत्नलाल भाग्य से एक बड़ी सरकारी पदवी पर पहुँच गया है। हमको उसके कथन का आदर करना चाहिए। हम व्यापारी लोग सरकारी अफसरों से झगड़ा नहीं कर सकते।"

"दादा ! तुम ठीक कहते हो। मुझसे कहो तो मैं उससे क्षमा माँग लेता हूँ, परन्तु एक बात विचार कर लो। पिताजी ने अपने जीवन-काल में केवल एक ही सीख दी थी। वह यह कि सत्य का व्यवहार करने से मनुष्य सुखी रहता है। रत्नलाल ने झूठ का आश्रय ले लिया है। इससे मुझको उससे किसी प्रकार के भी कल्याण की आशा नहीं है।"

"क्या झूठ कह रहा है वह ?"

"सबसे पहले उसने भावना की सगाई अपने साले मोहन से करवाने के लिए मुझे झूठ बताया कि वह बी० ए० पास कर चुका है। दादा ! मेरे मन में सरकारी डिग्रियों का कुछ भी महत्त्व नहीं। इस पर भी रत्नलाल ने मुझे धोखा देना चाहा। वह स्वयं सरकारी नौकर है। कदाचित् उसके मन में युनिवर्सिटी की डिग्रियों की भारी महिमा है। इस कारण उसने अपने चाचा को भी अपनी भाँति मूर्ख मान, यह झूठ बोल दिया।

"इसके अतिरिक्त उसने भावना पर झूठा लांछन लगाया कि उसका सुन्दर से अनुचित सम्बन्ध है। जब वह यह भी सिद्ध नहीं कर सका तो सुन्दर पर झूठा आरोप लगाया कि वह चोर है और मुझको लूट रहा है।

"अन्त में जब सुन्दर यहाँ से गया तो उसने यह विख्यात कर दिया कि वह मेरी चोरी करके भाग गया है।

"दादा ! मेरा धन अपने साले को दिलवाने के लिए यह सब झूठ का आश्रय लिया गया है। मैं इसको न तो अपने लिए और न ही उसके लिए हितकर समझता हूँ। मैंने ही उसको कहा था कि वह मुझसे क्षमा माँगे अन्यथा मेरा घर छोड़कर चला जावे। उसने घर छोड़ चला जाना ही उचित समझा है।"

इस पर रघुवीर को अपने छोटे भाई यादव के घर से भाग आने की घटना स्मरण हो आई। यादव उन दिनों सोलह-सत्रह वर्ष का था और रघुवीर बीस का। रघुवीर को क्लब में जुआ खेलने की लत लग गई थी। एक बार वह लगभग एक हज़ार रुपया हार गया तो पिता जी की जेब में से एक हजार रुपये के नोट चुराकर कर्ज चुका आया।

पिता को जब पता चला तो उसने इसके विषय में पूछताछ शुरू की। रघुवीर ने झूठ बोलकर कह दिया कि उसने यादव को कोट के पास खड़े देखा था। इस पर यादव को बहुत पीटा गया। यहाँ तक कि उस मार से वह दो दिन तक ज्वर-ग्रस्त रहा। जब वह ठीक हुआ तो घर छोड़ बम्बई चला आया। पिता ने समझा कि चोर पुत्र घर से भाग गया है, यह ठीक ही हुआ। रघुवीर को सन्तोष था कि चोरी के दण्ड से वह

बच गया है।

यादव बम्बई में एक भले और समझदार मिल-मालिक की नौकरी पा गया। सत्य और ईमानदारी का आश्रय पा, वह उन्नति करता-करता पन्द्रह वर्ष में स्वयं एक मिल खोल बैठा।

उसको उन्नति करते देख राधा के पिता ने, जो उसके साथ ही मिल की नौकरी करता था, उसको अपना दामाद बना लिया। विवाह तो मिल का मालिक बनने के पश्चात् हुआ। विवाह के समय यादव तीस वर्ष की आयु का हो चुका था। यादव का व्यवहार सबके साथ सत्य और ईमानदारी का रहा था।

बम्बई के वातावरण में मनोविनोद का भूखा यादव एकाकी जीवन से ऊबकर कभी इधर-उधर वासना-तृप्ति करता रहता था। इस पर भी व्यापार में वह कभी भी पथच्युत नहीं हुआ। विवाह के पश्चात् तो वह ढीले जीवन को छोड़, अपनी पत्नी में निष्ठा का जीवन व्यतीत करने लगा था।

राधा को एक बार अपने पति के अवांछित जीवन का ज्ञान हुआ तो यादव ने अपना सारा जीवन-वृत्तान्त उसके सम्मुख खोल दिया। इससे, पहले तो राधा को दुःख हुआ, परन्तु अपने पति का पिछला जीवन सुन वह सन्तोष कर बैठी।

घर में भावना उत्पन्न हुई तो यादव ने अपने बड़े भाई रघुवीर से सुलह कर ली। रघुवीर तो अपने झूठ की बात भूल गया था, परन्तु यादव को सब बात स्मरण थी। इस पर भी जब भाई ने देखा कि यादव उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है, तो सुलह कर बैठा।

इस समय पिता का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चुका था। यादव ने भी अब पिता के अन्तकाल में मन का रोष निकाल, उनकी सेवा-शुश्रूषा करन का यत्न किया।

भावना के उत्पन्न होते समय राधा बहुत बीमार हो गई थी और डॉक्टरों की सम्मति से राधा का गर्भाशय निकलवा दिया गया था। इसके पश्चात् भावना के अतिरिक्त राधा की अन्य कोई सन्तान नहीं

हुई। राधा ने कई बार कहा कि सन्तान के लिये उसका पति पुनः विवाह कर ले, परन्तु यादव को सन्तान में रुचि नहीं थी। परिणामस्वरूप भावना का पालन-पोषण बहुत लाड़-प्यार से होने लगा।

भावना जब पाँच वर्ष की थी तभी रत्नलाल बम्बई में नौकर हो गया। वह अपने चाचा के मकान में ही रहने लगा। रत्नलाल ने इकॉनोमिक्स में पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त की थी। इस उपाधि के बल तथा मेल-जोल के कारण रत्नलाल वेग से उन्नति करने लगा। वह 'रिजनल एक्सपोर्ट एण्ड इम्पोर्ट ऑफिसर' बन गया। कुछ ही दिनों में उसका विवाह पोर्ट ट्रस्ट के एक अधिकारी की लड़की से हो गया।

विवाह हुए चाहे छः वर्ष हो गये थे, किन्तु उनकी कोई सन्तान नहीं थी। इससे सुमित्रा बहुत चिन्तित रहने लगी थी। उसका स्वभाव भी बहुत चिड़चिड़ा और स्वार्थमय होता जा रहा था। सुमित्रा एक अच्छी सुन्दर, समझदार और पढ़ी-लिखी लड़की थी। अपने पति को वश में रखने के ढंग वह भली-भाँति जानती थी। अतः अपनी सन्तान के अभाव को पूरा करने का उपाय, वह अपने भाई का भावना से विवाह मान बैठी और इसके लिये यत्न करने लगी। रत्नलाल तो उसके हाथ में कठपुतली बन रहा था और इसी कारण वे सारी घटनाएँ घटित हुईं, जिनके लिए लाला रघुवीर बम्बई आया था।

[३]

रघुवीर चाहता था कि यदि रत्नलाल का कोई लड़का हो जाय तो वह उसको यादव का धर्मपुत्र बनाकर घर की सम्पत्ति घर से बाहर न जाने दे। इस विचार को मन ही मन छिपाकर, वह पहले यादव और रत्नलाल में सुलह करा देना चाहता था।

इसके लिए उसने रत्नलाल के कार्यालय में फोन करके यह निश्चय कर लिया कि वह उससे पृथक् में ग्रीन होटल में सायं पाँच बजे मिले। वह उससे एक अत्यावश्यक विषय पर बात-चीत करना चाहता है।

सायंकाल ग्रीन होटल के रैस्टोराँ में एक मेज़ पर चाय का आर्डर

दे, पिता-पुत्र विचार-विनिमय करने लगे। पिता ने कहा, "रत्न ! मैं तुम्हारी चाची और चाचा से बात कर आया हूँ। उनसे जो कुछ सुना है, उससे तो तुम ही अपराधी प्रतीत होते हो।"

"पिता जी! यह तो अपने-अपने दृष्टिकोण की बात है। मैं उन सब कामों को उचित और ठीक मानता हूँ, जिनसे नेक उद्देश्य को सिद्धि हो। मैंने सुन्दर के विषय में झूठ बोला था, परन्तु उसमें उद्देश्य यह था कि भावना और सुन्दर पृथक्-पृथक् रह सकें। दोनों यौवनावस्था प्राप्त कर चुके थे। इसमें उनमें किसी प्रकार का अनुचित सम्बन्ध बन जाना कठिन नहीं था।"

"परन्तु रत्नलाल ! तुम्हारा उद्देश्य ठीक था अथवा गलत, यह तो दूसरी बात है; लेकिन तुमने एक मच्छर को मारने के लिये बंदूक की गोली का प्रयोग किया है। सुन्दर को घर से निकालने में तुम स्वयं घर से निकल आये। इतना पढ़-लिखकर भी तुम अपना हित समझ नहीं सके। देखो, यदि तुम वहाँ रहते और तुम्हारे घर में अब तक कोई लड़का हो जाता तो मैं यत्न कर उस लड़के को यादव को गोद दे देता। रही भावना के विवाह की बात, उसका सुन्दर से विवाह होता है अथवा मोहन से, इससे तुमको क्या ? विवाह किसी के साथ हो, वह अपने भाग की सम्पत्ति ही तो लेगी।"

"पिता जी ! यह बात नहीं। यह मिल और चाचा जी की पूर्ण सम्पत्ति उनकी अपनी अर्जित की हुई है। वे वसीयत कर इसको किसी को भी दे सकते हैं। अतः मैं यह चाहता था कि मोहन दामाद बन जाय तो हम चाचा जी को, वसीयत में मोहन का नाम भी लिख देने को कहते।"

"परन्तु इससे तुमको क्या मिलता ?"

मेरे सन्तान नहीं हो सकती। मैं सुमित्रा को तलाक नहीं दे सकता। अतः यह विवाह की बात पक्की हो जाती, तो मैं मोहन को अपना धर्म-पुत्र बना लेता।"

"अर्थात् अपनी बहिन का विवाह अपने लड़के से कर देते ?"

"जी, नहीं; विवाह पहले हो जाता और पीछे मैं उसको अपने घर में अपना दामाद अर्थात् लड़का बना रख लेता।"

"रत्नलाल ! तुम कुछ मूर्ख होते जा रहे हो।"

"कैसे पिता जी ?"

"भावना का स्नेह अपने माता-पिता से होता और वह अपने पति को उनके घर में रखती और कदाचित् उन झूठे लांछनों के कारण, जो तुमने उन पर लगाये हैं, वह अपने पति को तुम्हारा शत्रु बना देती।

"मैं तो अब भी कहता हूँ कि अपने चाचा से क्षमा माँग लो। भावना के साथ सहानुभूति का भाव बनाओ और अपनी बीवी को किसी योग्य लेडी डाक्टर को दिखाकर एक लड़का उत्पन्न कर लो। तब ही चाचा की सम्पत्ति में एक अंश के तुम स्वामी बन सकोगे।"

"देखिये पिता जी ! मैं इस समय एक उच्च श्रेणी का सरकारी ऑफिसर हूँ। सहस्रों व्यक्ति मेरे अधीन काम करते हैं। यदि मैं चाहूँ तो लाखों रुपये रिश्वत ले सकता हूँ। सहस्रों व्यापारियों से मेरा वास्ता पड़ता है। इस कारण मैं इन सब लोगों के हाव-भाव और रहन-सहन का अनुभव रखते हुए यह समझ सका हूँ कि चाचा जी की सम्पत्ति का, मुझको कुछ भी भाग नहीं मिल सकेगा।

"हाँ ! एक अन्य उपाय मुझको सूझा है। उस पर मैं यत्न कर रहा हूँ। यदि मेरा दाव चल गया तो चाचा जी को कौड़ी-कौड़ी के लिये मोहताज बना दूंगा।"

"क्या करोगे ?"

"यह मेरा एक रहस्य है। समय पर अपको पता चल जायेगा।"

रघुवीर को अपनी झूठ बोलने और यादव को पिटवाने की बात स्मरण हो आई। वह मन में विचार करता था कि क्या इस प्रकार की कोई बात उसका लड़का भी करने वाला है ? पिता के झूठ से उसका छोटा भाई पिता की सम्पत्ति से वंचित हो गया था। इसके किसी झूठ से उसका चाचा अब मिल के स्वामित्व से वंचित हो जायेगा। वह यह स्मरण कर काँप उठा और चुपचाप अपने पुत्र का मुख देखता रह गया।

रत्नलाल ने अपनी योग्यता का परिचय देते हुए कहा, "पिता जी ! मैं इतने बड़े दफ्तर को यों ही नियन्त्रण में रखे हुए नहीं हूँ। मुझमें कुछ योग्यता है। मेरा सम्बन्ध है, मेरे पास पैसे भी हैं और मैं पहले बीसियों के दिवाले निकलवा चुका हूँ।"

"परन्तु रत्नलाल ! यह तो कुटिलता है। अपनी पदवी का लाभ उठाकर यह तुम पापकृत्य कर रहे हो।"

रत्नलाल खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने कहा, "जब तक मैं मन्त्रिमण्डल में अपने हिमायती रखता हूँ तब तक मुझको किसी बात की चिन्ता नहीं है। केन्द्र के मन्त्रिमण्डल में यदि मेरे पक्ष में तीन मन्त्री न होते तो मैं अब तक बम्बई की सड़कों की मिट्टी छानता होता।"

दोनों चाय पी रहे थे। रघुवीर की समझ में आ रहा था कि घर का भेदिया ही घर की नींवों पर तेल डाल रहा है। उसने कहा, "देख लो ! तुम सज्ञान हो, एक ऊँची पदवी पर पहुँचे हुए हो। कहीं ऐसा न हो कि दूसरों को गिराते-गिराते तुम्हारा अपना ही पाँव फिसल जाय और तुम नीचे मिट्टी में मिल जाओ।"

"आप चिन्ता न करें पिता जी ! सब ठीक होगा। चाचा ने मुझको झूठा, मूर्ख तथा अभिमानी कहा है। मैं इस अपमान का बदला लिये बिना नहीं रहूँगा।"

चाय अभी समाप्त नहीं हुई थी कि रघुवीर ने बैरे से बिल लाने के लिये कह दिया। रत्नलाल मुख देखता रह गया। उसने विस्मय में पूछ लिया, 'और नहीं पियेंगे पिता जी ?"

"बस, मेरा पेट भर गया है।"

"पर मुझे तो अभी पीनी है।"

"तुम्हारे पास चाय के लिये पैसे नहीं हैं क्या ? खाओ, पियो, मौज करो। मैं आज रात की गाड़ी से अहमदाबाद के लिये लौट रहा हूँ।"

बैरा टेबल पर से पेस्ट्री की प्लेट उठाकर ले गया। बिल बनवाने के लिये उसका ले जाना आवश्यक था। इस पर रत्नलाल को क्रोध चढ़

आया। वह वहाँ से उठ, जेब से रूमाल निकाल, मुँह पोंछता हुआ होटल से बाहर निकल गया।

रघुवीर होटल का बिल चुका, टैक्सी पर सवार हो अपने भाई के घर जा पहुँचा। उसने अपनी भाभी से कहा, "मैं अभी जा रहा हूँ। मालूम नहीं यादव कब तक आये। मुझको अहमदाबाद में काम है।"

'आप उनसे फोन पर बातचीत कर लीजिये। गाड़ी में तो अभी काफी समय है।"

परन्तु रघुवीर ने फोन नहीं किया। वह मन में सोचता था कि अपने साधु प्रकृति के भाई के साथ झूठ बोलना ठीक नहीं होगा। न ही अपने पुत्र की निन्दा करनी उचित है। इस कारण बिना बातचीत किये, उसने अपना सूटकेस उठाया और स्टेशन के लिये चल दिया।

यादव आज मिल से जल्दी ही लौट आया था। उसका विचार था कि भाई ने रत्नलाल को बुलवा रखा होगा और उससे बातचीत होगी। वह अपने मन में विचार करता था कि किसी न किसी प्रकार उससे सुलह कर लेनी चाहिये। इससे जीवन सरलता से चलने लगेगा। परन्तु घर पहुँच उसको पता चला कि उसका भाई स्टेशन चला गया है। इससे उसने अपनी घड़ी में समय देखा। गाड़ी जाने में अभी तीन घंटे शेष थे। इससे उसका माथा ठनका। वह समझ गया कि पिता-पुत्र में कोई बात हुई है, जिससे पिता अपने छोटे भाई का मुख देखना भी पसन्द नहीं करता।

राधा ने बताया कि उन्होंने टेलिफोन पर बात करने के लिए कहा था, किन्तु वे माने नहीं; इस बात से उनका मुख पीला पड़ गया था और वे बिना बात किये चुपचाप चल दिए थे।

यादव कुछ देर विचार करता रहा। पश्चात् मोटर में बैठ बम्बई सेण्ट्रल स्टेशन पर जा पहुँचा। वहाँ उसने प्रतीक्षालय में अपने भाई को गम्भीर विचारों में निमग्न देख, सामने खड़े हो पूछा, "दादा! नाराज हो गये क्या?"

"नहीं यादव! मैं तुमसे नाराज नहीं हूँ। इस पर भी इतना समझ

लो कि जो कुछ मैं एक सरकारी अफसर से सुनकर आया हूँ, उसे हज़म करने में बहुत समय लगेगा।"

"किन्तु दादा ! यह क्या कि बिना किसी प्रकार की सूचना दिये तुम अचानक प्रातःकाल आये और उसी दिन बिना किसी प्रकार की बात किए और सूचना दिए तुम सायंकाल वापस ही जा रहे हो ? क्या सरकारी अफसर का बाप होने से सभ्यता भी लोप हो जाया करती है ?"

"नहीं, यह बात नहीं यादव ! कुछ कहने-सुनने को रह नहीं गया। वहाँ बैठने की अपेक्षा यहाँ एकान्त में स्थिति का मनन करने के लिए चला आया हूँ।"

"और यहाँ," उसने अपने चारों ओर प्रतीक्षालय को यात्रियों से खचाखच भरा हुआ देखकर कहा, "बहुत एकान्त मिला है न आपको ? देखो दादा ! यदि लड़ना है तो स्पष्ट बता दो कि मैंने क्या अपराध किया है। मैं सत्य हृदय से कहता हूँ कि मैंने किसी का बुरा चिन्तन नहीं किया है।"

"ठीक है यादव ! इस समय मेरा मस्तिष्क काम नहीं कर रहा है। कुछ दिन पश्चात् मैं तुमको पत्र लिखूँगा।"

सेठ यादव ने देखा कि उसका भाई कुछ भी बताना नहीं चाहता। वह समझ गया कि पुत्र ने पिता के कान भरे हैं और पिता को भाई से पुत्र अधिक विश्वस्त प्रतीत हुआ है। वह यह भी समझा कि पुत्र ने अवश्य ही, जी भरकर, अपने चाचा-चाची और उनकी लड़की की निन्दा की होगी।

कुछ समय तक तो वह भाई का मुख देखता रहा, फिर बिना कुछ कहे, प्रतीक्षालय से बाहर निकल गया।

[४]

इसके पश्चात् सेठ यादव ने अपने भाई को पत्र नहीं लिखा और न ही उसके भाई ने अपने मन की बात उसे लिखी।

इतने बड़े घर में शून्यता का आवास हो गया। मणिलाल को छात्रावास में प्रविष्ट करा दिया गया था और वह मास में एक-आध बार ही अपनी बहिन से मिलने आता था। मणिलाल की पढ़ाई और छात्रावास का व्यय सेठ यादव ही वहन करता था। इसके अतिरिक्त उसकी बहिन उसको, अपने पास से कुछ रुपया जेब खर्च के लिये दे दिया करती थी।

घर में पुनः महाराज रसोइए की बन आई थी। अब वही बाज़ार से वस्तुएँ लाया करता था। इस प्रकार छः वर्ष के पश्चात् पुनः उसके भाग्य का सितारा चमक उठा।

रत्नलाल बॉम्बे-क्लब का सदस्य था। वहाँ उसका मेल-जोल प्रायः सभी सरकारी अधिकारियों से होता रहता था। बम्बई प्रदेश के लेबर ऑफिसर से बातचीत हुई तो उसने रत्नलाल को आश्वासन दिलवाया कि अवसर मिलते ही वह औलम्पिक मिल के मालिक के नाकों चने चबवा देगा।

इस समय एक घटना यह घटी कि रत्नलाल का स्थानान्तरण देश के उत्तरी विभाग में हो गया। उसको अब दिल्ली जाना पड़ गया। इस पर भी वह अपने मित्र, लेबर-ऑफिसर को लिखता रहता था।

बहुत प्रतीक्षा के पश्चात् वह अवसर भी आया। रत्नलाल से सेठ यादव का झगड़ा हुए तीन वर्ष और उसको दिल्ली गये दो वर्ष हो चुके थे। इस समय औलम्पिक क्लॉथ मिल में हड़ताल हो गयी।

हड़ताल का कारण यह था कि मिल का मैनेजर मोहनदास गांधी गुजराती था। मिल के मालिक गुजराती थे, परन्तु अधिकांश कार्य करने वाले महाराष्ट्रियन थे। भारत सरकार ने बम्बई प्रान्त के विषय में एक विशेष नीति का अवलम्बन लिया। प्रदेश-पुनर्गठन समिति ने तो सौराष्ट्र प्रान्त को कुछ बड़ा करने की सम्मति दी थी और बम्बई के साथ मध्य भारत का कुछ भाग मिलाकर महाराष्ट्र प्रान्त के निर्माण का मत दिया था। परन्तु भारत की केन्द्रीय सरकार को यह स्वीकार नहीं हुआ। बम्बई नगर के विषय में झगड़ा आरम्भ कर दिया गया। बम्बई

नगर सौराष्ट्र में जा नहीं सकता था। महाराष्ट्र में जाने से गुजरातियों को, जिनके हाथ में बम्बई का प्रायः सारा व्यापार और दस्तकारी थी, आपत्ति थी।

इस कारण बम्बई राज्य को बढ़ाकर, इसमें सौराष्ट्र मिला दिया गया। कुछ मध्यभारत के भाग भी इसमें सम्मिलित कर लिए गए और इस प्रकार मराठी और गुजरातियों में लट्ठबाज़ी चल गयी। बम्बई में मराठों ने जुलूस निकाले, पुलिस पर पत्थर फेंके और गुजरातियों के पेट में छुरे घोंपने आरम्भ कर दिये।

भारत सरकार ने अपनी नीति के समर्थन में युक्ति दी। भारत के प्रधान मन्त्री ने वक्तव्य दिये और व्याख्यानों में अपनी नीति का समर्थन किया। महाराष्ट्रियों और गुजरातियों को उपदेश दिये गये। परन्तु दोनों में से कोई भी पक्ष सन्तुष्ट नहीं हुआ। इस प्रकार एक ओर महागुजरात समिति और दूसरी ओर वृहन्महाराष्ट्र समिति बन गई।

इन दिनों मोहनदास गांधी पर एक मराठी युवक ने छुरे से आक्रमण कर दिया। उसको पकड़ने का यत्न किया गया, किन्तु वह मिल के कर्मचारी यूनियन के कार्यालय में भाग गया और जब मोहनदास अपने साथ कुछ मिल के चौकीदारों को लेकर उस युवक को पकड़ने के लिए यूनियन के कार्यालय में पहुँचा, तो यूनियन के मन्त्री ने कह दिया कि यहाँ पर इस प्रकार का कोई भी युवक नहीं आया।

विवश मोहनदास ने पुलिस में रिपोर्ट लिखा दी। तुरन्त ही इसकी जाँच आरम्भ हो गई। मोहनदास के हाथ पर छुरे का गहरा घाव आया था।

हत्या के यत्न का मुकद्दमा बना और यूनियन के मन्त्री पर हत्यारे की रक्षा करने का केस बनाया गया। ज्यों ही यूनियन का मन्त्री पकड़ा गया, कारखाने के कर्मचारियों ने हड़ताल करने का निश्चय कर लिया।

कारखाने में नब्बे प्रतिशत कर्मचारी महाराष्ट्रियन थे। लेबर ऑफिसर भी महाराष्ट्रियन था, साथ ही वह रत्नलाल का मित्र भी था।

उसने यह अवसर देख, अपना एक विश्वस्त कार्यकर्ता कर्मचारियों के पास भेजकर उनको भड़का दिया।

अतः हड़ताल का नोटिस दे दिया गया। मैनेजर ने सेठ जी की राय से नोटिस की नकल और उसका उत्तर, जो यूनियन को दिया गया था, सरकारी अधिकारियों के पास भेज दिया। उत्तर में लिख दिया गया था कि यूनियन के मन्त्री को पुलिस ने पकड़ा है। मिल का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः इस कारण मिल में हड़ताल करना सर्वथा अनियमित होगा।

इस पर भी हड़ताल हो गई। मिल बन्द हो गई। जब यह समाचार रत्नलाल को मिला, तो वह अपने कार्यालय से छुट्टी ले, बम्बई आ गया।

दूसरी ओर यूनियन के मन्त्री पर मुकद्दमा चला। हत्या करने का यत्न करने वाला युवक पकड़ा गया। चौकीदारों ने पहचान लिया और उस पर भी मुकद्दमा चलने लगा।

मुकद्दमा सेशन सुपुर्द हो गया। वहाँ हत्या का यत्न करने वाले युवक ने कोर्ट से क्षमा माँग ली और बताया कि यूनियन के मन्त्री ने ही उसको मोहनदास की हत्या करने के लिए प्रेरणा दी थी।

हत्या का यत्न करने वाले ने स्वीकार किया कि उसने भूल की है, उसको क्षमा कर दिया जाय। इस बयान के पश्चात् यूनियन के मन्त्री पर दफ़ा बदल गई। पहले तो केवल हत्यारे को छिपाने का दोष था, अब हत्या की प्रेरणा देने का तथा हत्या करने में सहायता देने का अपराध लगाया गया और उसके अनुसार ही दफ़ा बदल गई।

पहले अपराध में तो अधिकाधिक पाँच वर्ष की कैद का दण्ड था और इस नये अपराध में आजन्म कारावास का दण्ड भी हो सकता था।

इससे तीन कर्मचारियों ने, जो तीन मास से हड़ताल पर थे और अब भूखे मरने लगे थे, मिल को आग लगाने की योजना बना ली। यह यत्न पुलिस ने, जो हड़ताल के आरम्भ से ही मिल पर नियुक्त थे, विफल

कर दिया।

आखिर हड़ताल का विषय, जो सुलह के लिए बोर्ड के पास तीन मास से लटक रहा था, अब सालस बोर्ड के पास भेज दिया गया। दोनों बोर्डों का चेयरमैन राज्य का लेबर-ऑफिसर था और उसका यह यत्न था कि मिल जितनी अधिक-से-अधिक काल तक बन्द रह सके, उतना ही उचित होगा।

मिल के वकील सेठ की राय से यह पक्ष ले रहे थे कि हड़ताल अनियमित है। उन्होंने यह नोटिस दे दिया था कि यदि हड़ताली अमुक तिथि तक अपने कार्य पर उपस्थित नहीं होंगे तो वे 'डिसमिस' कर दिये जावेंगे। निश्चित तिथि पर जब कोई कर्मचारी उपस्थित नहीं हुआ तो सबको निकाल दिया गया और उनको कह दिया गया कि वे पुनः प्रार्थना-पत्र देकर कार्य पर आ सकते हैं।

सालस बोर्ड का अध्यक्ष समझता था कि कर्मचारियों का मुकद्दमा ढीला है और इस हड़ताल से वे तबाह हो जायेंगे। इस कारण वह सेठ के वकीलों को डरा-धमकाकर समझौता कराना चाहता था।

कर्मचारियों की तो कठिनाई थी ही। मालिक को भी भारी क्षति हो रही थी। क्लर्क और प्रबन्धक विभाग के सेवक हड़ताल पर नहीं थे। वे नित्य आकर कार्यालय में अपनी उपस्थिति लिख जाया करते थे। उनके वेतन का जोड़ भी पन्द्रह हज़ार रुपया मासिक से अधिक हो गया था। इसके अतिरिक्त कारखाने का कार्य चालू रखने के लिए एक भारी मात्रा में रुई मोल ले ली गई थी। वह रुई बैंकों के रुपये से मोल ली गई थी अतः बैंकों के गोदामों में रखी हुई थी और उस पर ब्याज पड़ रहा था। सेठ के घर का खर्चा और मुकद्दमे पर भी धन का अपव्यय हो रहा था।

पाँच मास तक मिल बन्द रहने के पश्चात् सालस बोर्ड ने निर्णय दे दिया, "मजदूरों ने यह अनियमित हड़ताल धोखे में आकर की है। मालिकों की ओर से केवल यूनियन के पत्र का उत्तर लेकर सन्तोष कर लिया गया था। मालिकों को चाहिये था कि वह प्रचार के लिए विज्ञप्तियाँ छपवाकर अथवा लाउड स्पीकर से मिल-मजदूरों की बस्तियों में

घोषित करवाते और अनपढ़ मज़दूरों को समझाते कि हड़ताल अनियमित है।

"अतः यह बोर्ड दोनों पक्षों को इस दुर्भाग्यमय घटना में समानरूपेण उत्तरदायी मानता है। इस कारण यह निर्णय देता है कि पाँच मास में तीन मास का वेतन मालिक दें और एक सप्ताह के अन्दर मिल को खोल दें।

"इस काल के व्यतीत होने पर भी यदि कोई कर्मचारी उपस्थित न हो तो बोनस इत्यादि देकर, उसको छुट्टी दे दी जाय।"

सेठ के वकील इस सालसी फैसले के विरुद्ध हाई कोर्ट में अपील करने की राय दे रहे थे। सेठ ने बोर्ड के सामने यह कह दिया, "मेरे साथ न्याय नहीं किया गया। इस कारण मैं इस निर्णय के विरुद्ध हाई कोर्ट में अपील करूँगा।"

इस पर लेबर ऑफिसर ने कहा, "पर सेठ जी ! कारखाना तो खोल दो।"

"मैं उन कर्मचारियों में से एक को भी नहीं रखना चाहता। वे सब अपराधी हैं। मैंने पाँच मास पूर्व ही उनको काम पर से निकाल दिया था और मैं उनके वेतन इत्यादि का उत्तरदायी नहीं हूँ।"

"इससे आपकी भी दिन-प्रतिदिन हानि हो रही है।"

"ठीक है। परन्तु यह तो बोर्ड को पहले ही विचार कर लेना चाहिये था। अब जब कि मेरा दिवाला पिट चुका है, इस प्रकार की बातें करने का कोई लाभ नहीं।"

लेबर ऑफिसर इससे मन में प्रसन्न था। वह देख रहा था कि यदि सालसी बोर्ड का फैसला मान भी लिया जाय तो भी कर्मचारियों को ढाई-तीन मास की हानि होगी। इस कारण उसने यूनियन के नवीन मन्त्री को बुलाकर कहा, "इससे अच्छा निर्णय तुम्हारे पक्ष में नहीं हो सकता। इस कारण रात को सेठ जी के मकान पर एकत्रित होकर उनकी मिन्नत-खुशामद कर आगे अपील न होने दो।"

लेबर ऑफिसर के सुझाव के अनुसार ही कार्य किया गया।

सेठ तो मिल खोलने के लिए तैयार था, परन्तु वह यूनियन की ओर से आश्वासन चाहता था कि उनकी ओर से किसी प्रकार की अपील नहीं की जावेगी। यूनियन ने यह आश्वासन दे दिया और मिल खोल दी गई।

सब हिसाब लगाने पर विदित हुआ कि मिल को लगभग बीस लाख रुपये की हानि हुई है। सेठ जी इसको कडुवा घूंट समझकर पी गये; परन्तु वे भविष्य में इस प्रकार की दुर्घटना से बचने का उपाय करने लगे।

वे 'लेबर वैलफेयर ऑफिसर' की पदवी पर किसी योग्य व्यक्ति को रखना चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे अब अपनी मिल में उत्तर प्रदेश और मद्रास के ही कर्मचारियों को अधिक स्थान दे रहे थे। जब भी कोई स्थान रिक्त होता, वहाँ पर महाराष्ट्र और गुजरात प्रदेश के बाहर का ही व्यक्ति नियुक्त किया जाता।

इस समय मिल की कर्मचारी यूनियन ने सालस बोर्ड के निर्णय के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील कर दी।

[५]

होई कोर्ट में अभी मुकद्दमा चल ही रहा था कि सेठ जी पूना गये और सुन्दर को साथ ले आये। सुन्दर ने देखा कि भावना अब एक पूर्ण युवती प्रतीत होने लगी है। उसका सौंदर्य और भी निखर आया है। सेठानी राधा अब बूढ़ी हो गई थी। उसे मधुमेह का रोग लग गया था। वह नित्य ही 'इन्सुलिन' के 'इन्जेक्शन' ले रही थी। उसका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा था।

सेठ साहब भारी आर्थिक हानि होने पर भी और मुकद्दमे की चिन्ता लगी रहने पर भी, प्रत्यक्ष रूप में वैसे ही दिखाई देते थे, जैसे सुन्दर के पूना जाने से पूर्व थे।

सुन्दर आया तो उसने सेठानी जी के चरण स्पर्श किये और हाथ जोड़कर पूछने लगा, "आप तो बहुत ही दुर्बल प्रतीत होती हैं। स्वास्थ्य ठीक नहीं है क्या ?"

"सुन्दर ! अब तो अवस्था बहुत बिगड़ गई है। किसी भी दिन परमात्मा बुला सकता है।"

भावना ने बताया, "माताजी को 'डायबिटीज' हो गई है और सब प्रकार के उपचार करने पर भी स्वास्थ्य बिगड़ता ही चला जा रहा है।"

सुन्दर ने कहा, "माँ जी ! हमारे यहाँ के लोगों में यह बात विख्यात है कि यह रोग भारत के तीर्थों की पैदल यात्रा करने से निर्मूल हो जाता है।"

"तुमने इस प्रकार किसी को ठीक होते हुए देखा है क्या ?"

"नहीं, देखा तो नहीं। इस पर भी यह किंवदन्ती प्रचलित है।"

राधा ने लालसा-भरी दृष्टि से सेठ जी की ओर देखा। सेठ जी ने कह दिया, "मुकद्दमा समाप्त हो जाय और यदि सुन्दर मेरे स्थान पर कारोबार देखना स्वीकार करले तो मैं यह चिकित्सा भी करा सकता हूँ।"

सेठानी ने मुस्कुराते हुए सुन्दर से पूछा, "बोलो सुन्दर ! स्वीकार करते हो ?"

"सेठ जी का काम तो मैं कर नहीं सकता। इस पर भी अन्य कर्मचारियों की सहायता से काम का प्रबन्ध तो मेरे बिना भी हो जावेगा।"

ये चारों बैठक में बैठे बातें कर रहे थे। सेठ नें गम्भीर होकर कहा, "मिल का प्रबन्ध अब बहुत ही कठिन हो गया है। इस वर्ष बीस लाख की हानि हो चुकी है। इस पर भी यूनियन के अधिकारियों को सन्तोष नहीं हो रहा।

"परन्तु सुन्दर ! तुम मेरी भाँति कुशलता से प्रबन्ध तो कर ही लोगे, इसके अतिरिक्त एक अन्य उत्तरदायित्व मेरे कन्धों पर है। वह तो केवल तुम्हारे करने से ही पूर्ण होगा।"

"वह क्या है सेठ जी ?"

"बताऊँगा। अभी आज तुम आराम कर लो। कल अपने जिल्दसाज से मिल लो। इसके पश्चात् मैं तुम्हें अपनी योजना बताऊँगा।"

रात हो गई थी। रात का भोजन कर सब सोने के लिए चले गए।

सुन्दर को पहले तो सीढ़ियों के पास एक बहुत ही छोटा-सा कमरा मिला हुआ था। आज उसको रत्नलाल वाला कमरा दिया गया। उस कमरे के साथ ही पृथक स्नानागार, शौचालय और पाकशाला थी। सुन्दर को जब यह कमरा दिखाने भावना आई तो उसने विस्मय प्रकट करते हुए कहा, "भावना ! मेरे वाला पुराना कमरा खाली नहीं है क्या ?"

"वह खाली तो है। उसमें आपकी पुस्तकें रखी हुई हैं। किन्तु पिता जी की आज्ञा है कि अब आपको यह कमरा दिया जाय।"

"यह उन्होंने अब कहा है क्या ?"

"नहीं, यह तो वे जाने से पूर्व ही कहकर गए थे। मैं उनके साथ जाने वाली थी, परन्तु वे कहने लगे कि आपको साथ लेकर आयेंगे और मैं यह कमरा साफ करवा रखूँ।"

"परन्तु अब तो सेठ जी मेरे रहने का कमरा देख आये हैं। इससे उनका विचार बदल गया होगा।"

"यदि ऐसा होता तो वे बता देते। यह तो हम सबको समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई कि आपकी आय अभी साधारण ही है। पिता जी हिसाब लगा रहे थे कि डेढ़ वर्ष में आपकी पुस्तक का प्रथम संस्करण बिका है। आपने दो सहस्र छपवाई थीं। अर्थात् बारह हज़ार की पुस्तकें बिकी हैं और सब प्रकार के खर्चे निकालकर लेखक और प्रकाशक की मिली हुई आय बीस प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती। अर्थात् डेढ़ वर्ष में चौबीस सौ रुपयों के लगभग आय हुई है। दूसरे शब्दों में सवा सौ रुपया मासिक आय हुई है। इतनी आय में आपकी अवस्था कैसी है, इसका अनुमान तो जाने से पहले ही पिता जी ने लगा लिया था। तब भी पिता जी ने यह कमरा आपको ठहराने के लिए नियत किया था।

"वे कहते थे कि लेखक तो परमात्मा का रूप होता है। यह बात दूसरी है कि कोई लेखक सोलह कला परिपूर्ण न हो तो भी उसमें परमात्मा का अंश साधारण व्यक्तियों से अधिक होता है।

"वे अभी-अभी माता जी से कह रहे थे कि हमारे घर में मानो भगवान् आ गये।"

इस समय तक वे कमरे में पहुँच गये थे और भावना ने नौकर को बुलवाकर पलंग के समीप जल से भरा लोटा और गिलास तिपाई पर रखवा दिया। इसके पश्चात् उसने कहा, "अब मैं चलती हूँ। आशा करती हूँ कि पहले को भाँति अब आप चुपचाप भागकर नहीं जावेंगे।"

इस पर दोनों हँस पड़े। भावना ने फिर कहा, "अब आप सदैव यहीं पर रहने के लिए अपने मन को तैयार कर लीजिये।"

"क्यों?"

"अब मैं घर को नीचे से ताला लगवाकर ही सोऊँगी।"

"जेल का दारोगा तो बहुत ही कठोर दिखाई देता है।"

"हाँ, आपका अनुमान ठीक ही है।"

अगले दिन सुन्दर अपनी पुस्तकों के पार्सल बनाकर भिन्न-भिन्न स्थानों के लिये बुक कराता रहा और उस दिन सेठ यादवदेव हाईकोर्ट में व्यस्त रहे। आज दोनों ओर के वकीलों की बहस थी। हाईकोर्ट ने बहस सुनकर निर्णय की तिथि निश्चित कर दी।

अगले दिन सेठ जी सुन्दर को मिल में ले गये और वहाँ के भिन्न-भिन्न काम बताते रहे। उसी सायंकाल सेठ जी ने सुन्दर को एकान्त में बैठाकर कहा, "मेरा तुमसे निवेदन है कि तुम अब बम्बई में ही रह जाओ। मैं मिल में लेबर वैलफेयर ऑफिसर का कार्य तुमको दूँगा और मैं समझता हूँ कि तुम श्रमिकों को सन्तुष्ट रखने में सफल भी हो जाओगे।

"काम बहुत हल्का है। इस कारण शेष समय में तुम अपने पढ़ने-लिखने का कार्य चालू रख सकोगे। छपवाने तथा बेचने का काम किसी अन्य को देना होगा। उस विषय में भी विचार कर लेंगे।

'तुम पहले इतना काम कर लो। फिर तुमसे एक अन्य कार्य कराना है। भावना का हाथ तुम्हारे हाथ में पकड़वाना है। जब यह कर लोगे तो फिर मैं भावना की माँ को लेकर तीर्थ-यात्रा के लिए चल पड़ूँगा। मुझे एक वैद्य ने भी यही बात बताई थी, जो तुमने बताई है।"

आपकी आज्ञा का मैं पालन करूँगा। इस पर भी मेरा निवेदन है कि आप अभी कुछ दिन के लिये इस विचार को स्थगित कर, मेरे विषय में और अधिक अध्ययन कर लीजिये। मुझ सरीखे अपरिचित जाति, गोत्र के व्यक्ति को इतनी ऊँची पदवी देकर, बाद में कहीं पश्चात्ताप न करना पड़ जाय।"

"यों तो मैंने बहुत विचार कर लिया है। इस पर भी मैं तुमको समय दूँगा, जिससे तुम अपने कार्य करने का अभ्यास कर लो। हाँ, तुमको अब अपने सब ग्राहकों को यहाँ का पता दे देना चाहिये और अपना कार्यालय भी यहीं ले आना चाहिये।"

[६]

तीन-चार दिन में अपनी पुस्तकों को भेजने का कार्य समाप्त कर और शेष पुस्तकों का स्टाक अभी पूना न भेजने के लिये कह, वह पूना लौट गया।

पूना पहुँच अपने कार्य को समेटते हुए एक दिन वह अपने बम्बई जाने का निर्णय बताने के लिये मिसेज़ पाल के पास गया। मिसेज़ पाल ने पूछा, "कहाँ गये थे सुन्दर ? मैं एक दिन तुम्हारे घर पर गई थी।"

"क्यों मदर ! क्या कुछ काम था ?"

"हाँ, तुमसे बहुत कुछ विचार करना था, यहाँ एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई है।"

"क्या बात है ? नौकरी छोड़ दी है क्या ?"

"हाँ, कैसे जाना तुमने ?"

"लगभग एक मास हुआ, जब मैं पिछली बार मिलने आया था, तो स्कूल का मैनेजर मिस्टर फ्रैंकलिन जौज़फ यहाँ उपस्थित था। मैंने देखा था कि वह एक विचित्र ढंग से आपकी ओर देख रहा है। मेरा अनुमान था कि वह आपसे प्रेम करने लगा है। आप विवाह तो करेंगी नहीं और इससे आपका उस मैनेजर के अधीन कार्य करना कठिन हो जावेगा।"